लक्ष्मी

स्थापना—

विद्वद्वर डा० श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल

हरगोविन्द गुप्त

प्रथमावृत्ति
१०००
वैशाखी पूर्णिमा २०१८ वि०
३) तीन रुपया
द्वितीयावृत्ति १२५०
माघ कृष्ण ६, २०१८ वि०
शहीद स्मृति दिवस
१९६२

मुद्रक
अमलकुमार वसु,
इंडियन प्रेस, (प्राइवेट) लिमिटेड,
वाराणसी शाखा।

श्री

परिचय और प्रणति

एक परिवार के माध्यम से मानव-संस्कृति और लोक परम्परा की कुछ पुरानी, बीतती बिसरती बातें यहाँ इस संग्रह में संग्रहीत हैं। कुछ लौकिक हैं, कुछ पौराणिक हैं। कैसी हैं वे, कहने सुनने का अधिकार मुझे तो है ही नहीं, पर स्यात् आपको भी न हो। इसलिए कि न जाने कब के किस युग से घुसी-बासी हुए बिना वे पुलक और प्रेरणामयी बनी चल रही हैं। कितने भावुक और श्रद्धालु जनों का सौहार्द्र वे पा चुकी हैं, पा रही हैं, और आगे भी पाएँ इसका ठिकाना नहीं।

मुझे यहाँ यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि यह संग्रह केवल संग्रह मात्र है, कुछ इनका, कुछ उनका। इस जन का अपना ऐसा कुछ भी इसमें नहीं है, जिसे वह अपना कह सके।

'बहू लक्ष्मी' श्रीरामदास चौदा चिरगाँव ने उस समय बताई थी, जब पूरी पुस्तक तैयार होकर प्रेस को जा रही थी, संयोग की बात कि अन्त में आने पर भी उसे प्रथम स्थान मिला। यही संसार चक्र की गति है।

'लक्ष्मी की त्रिवाचा' श्रीरामकृष्णजी सेठ मोंठ की देन है। बहुत से घरों की स्त्रियाँ इस कहानी को दिवाली पूजन के पश्चात कहती हैं। वर्षों पहिले दैनिक हिन्दुस्तान के दिवाली अंक में यह छप चुकी है।

'लक्ष्मी और मदिरा वेश्या व जुए का निषेध' लड़कपन की स्मृति है। अपने गाँव घमना (झाँसी) की चौपाल पर किन्हीं दिवंगत सज्जन से उसे सुना था। सम्भवत स्व० श्री राजाराम 'बब्बा' से।

'लक्ष्मी और मानवता' श्री श्यामसुन्दर जो दरौंदिया कानपुर की देन है। (भारत) प्रयाग में प्रकाशित हो चुकी है।

'मातृ पितृ सेवा और लक्ष्मी' श्रद्धेय स्वामी दियानन्द सरस्वती (नागपुर) के एक भाषण का सारांश है।

'लक्ष्मी और अहम्' पद्म पुराण (उत्तरा खण्ड) में इन्द्र दुर्वासा संवाद की कथा है।

'लक्ष्मी और तुलसी' यह भी एक पौराणिक प्रसंग है। जिसे अपनी वृद्ध वनस्पति सम्बन्धी खोज में कहीं पाया था। पाठक क्षमा करें कि मतलब के लिए कथा की स्मृति तो बनी रही, पर प्रयत्न करने पर भी उस स्थल की स्मृति नहीं आ रही है।

'सत्सङ्कल्प और लक्ष्मी' रघुवंश का रघु कौत्स संवाद है। जो दैनिक जागरण (झाँसी) में प्रकाशित हो चुका है।

'अनाथ रक्षा और लक्ष्मी' स्कन्द पुराण में वर्णित राजा पुण्य निधि की कथा है। स्वतंत्र भारत (लखनऊ) में प्रकाशित हो चुकी है।

'सुमति और लक्ष्मी' इसमें दो प्रसंग हैं। पहिला जो सुमति का है। वह एक किंवदन्ती के आधार पर है, और दूसरा जो आचार-व्यवहार का है, वह महाभारत अनुशासनपर्व का लक्ष्मी रुक्मिणी संवाद है।

'आचार और लक्ष्मी' यह भी आचरण सम्बन्धी ही है। महाभारत शान्तिपर्व के इन्द्र लक्ष्मी संवाद की कथा इसमें है। यह संवाद भी लखनऊ के स्वतंत्र भारत में प्रकाशित हो चुका है।

'शील और लक्ष्मी' में महाभारत शान्ति पर्व के इन्द्र प्रह्लाद प्रसंग की कथा है। जो स्वतंत्र भारत लखनऊ में प्रकाशित हो चुकी है।

'गोबर और लक्ष्मी' महाभारत अनुशासन पर्व की गौ लक्ष्मी संवाद की कथा है।

'लक्ष्मी का विराट विश्वरूप' मेरे साहित्यिक उपदेष्टा विद्वद्वर डा० श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल का संकेत और विष्णु पुराण की कथा है। इसी प्रकार वार्ता का अन्तिम भाग श्री भगवत नारायण जी शुक्ल वकील चिरगाँव (झाँसी) का सुझाव है। जिसकी बातें जहाँ तहाँ से जोड़ी गई हैं।

इस प्रकार भिन्न भिन्न स्थानों समयों और स्वरों में सुनी गई इस एक ही तत्त्व की बात को यहाँ अपने ढंग से उपस्थित किया है, नहीं जानता उसमें कहाँ तक सिद्धि मुझे मिली है।

साबुन लगाने की कला से कोरम कोर होकर भी देखा देखी सर्फ और टिनोपाल का प्रयोग करता हूँ। भले ही अपनी अनभिज्ञता से मसाला ज्यादा पड़ जाने से सूत के तन्तु कमजोर पड़ जाते हों, वा दूसरों की अपेक्षा कपड़े भी उतने साफ न निकाल पाता होऊँ, फिर भी मन की हविश पूरी कर लेता हूँ। इन कहाँनियों के चित्रण में भी ऐसी ही बात है। संस्कृत तो क्या हिन्दी भी ठीक से नहीं लिख बोल पाता हूँ। फिर भी लेखक बना हूँ।

अपने कलम घिसाई के धन्धे के प्रारम्भ से ही निजी कल्पना की पूँजी के अभाव में इधर उधर की चीजें लेकर ही चलता हूँ। इसमें भी यही है। अस्तु भावों के बारे में तो मुझे किसी से कुछ कहना नहीं है, वे तो तत्त्ववेत्ता ऋषियों के और दूरदेश लोक व्यवस्थाकारों के अनुभव सिद्ध विचार हैं ही, अब रही भाषा की बात सो उसके सम्बन्ध में भी मुझे कुछ नहीं कहना है, कवि की वाणी है—

'भाव अनोखो चाहिए, भाषा कैसिहु होय'

मेरे स्नेही बन्धु वैद्य विशारद श्री मुन्नूलाल जी बिसवारी के कथनानुसार उनकी जानकारी में एक भाई ने 'लक्ष्मी की नियाचा' शीर्षक कहानी के मेरे पद्यात्मक रूप को सुनकर मदिरा छोड़ दी थी। तुलसी के प्रसंग को सुनकर मेरी चिररोगिणी पत्नी के मन में तन बल के अभाव में भी तुलसी के प्रति आस्था हुई और वे नित्य सन्ध्या समय उसके निकट दिया धरने लगी हैं। इसी प्रकार मेरे मुरझे मन में नित्य नया उल्लास लानेवाली पौत्री मंगला के मन में भी फूल पौधों के प्रति अनुराग हुआ जिसे मैं अपने श्रम की सिद्धि मानता हूँ। अब आगे भी यदि किसी अन्य भाई बहिन के मन में इन कहानियों से कोई विचार आता है, तो वह मेरे श्रम का अतिरिक्त लाभ होगा, जिसके लिए मैं अनजाने ही उनकी कृपा का आभार मानूँगा।

प्रकाशकीय साधनों के अत्यन्ताभाव में भाई श्री आनन्द कृष्ण, उर्मिला चरण, शिवसम्पत्ति शर्मा तथा श्री गणेशदासजी ने अयाचित—अकल्पित—रूप से ही असम्भव को सम्भव बनाया इसके लिए किससे क्या कहूँ इन सबसे इतनी आत्मीयता है कि कुछ भी कहना असम्य अपराध होगा। अस्तु वे सब बिना कुछ कहे ही क्षमा करें।

श्री गोपेश्वर जी चित्रकार ने चित्रों की डिजाइनें और अन्नपूर्णा ब्लाक वर्क्स बनारस ने ब्लाक बनाने में तथा श्री कमलकुमार वसु व्यवस्थापक इण्डियन प्रेस, बनारस (शाखा) ने अपने अपने कामों में जो सहज स्नेह बताया उससे अनुभव होता है कि सहृदयता या सौजन्यता कुछ स्थान विशेषों की ही नहीं समग्र की वस्तु होती है। सभी कहीं जगमाता लक्ष्मी का प्रकाश पहुँचता है। समय गति के अनुसार कहीं कम कहीं ज्यादा।

श्रद्धास्पद डा० श्रीसम्पूर्णानन्दजी तथा आचार्यवर डा० श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी, एवं सम्माननीय सरकार जी (श्रद्धेय राय श्रीकृष्णदासजी) ने अपने

अपने व्यस्त कार्यक्रमों में भी इन्हें देखा पढ़ा और अपने स्नेह का बल दिया। और उसी प्रकार श्रद्धास्पद् डा० श्रीवासुदेव शरण जी अग्रवाल ने अपनी शारीरिक अस्वस्थता में भी इन्हें देखा और स्थापना रूप में लक्ष्मी के सम्बन्ध में अपने अनुरूप विवेचना की इसके लिए क्या कहूँ ! इन सबके स्नेह का बल मेरे साथ है, मैं उनके निकट हूँ, यही मेरे लिए बहुत है। अपने सकुचाए स्वर और झुके मस्तक से उन्हें प्रणाम ही कर सकता हूँ।

जिन पत्र सम्पादकों ने समय-समय पर इन कहानियों को अपने पत्रों में प्रकाशित कर मुझे उत्साहित किया उसके लिए उन सब का आभारी हूँ।

पशु पक्षियों में तो सगति का प्रभाव आता ही है, पर कहा जाता है, 'चन्दन तरु की बास ते सब बन चन्दन होत' अस्तु अपने जिन शुभैषी गुरुजनों के निकट नित्य बैठता उठता और बतयाता हूँ, उनके सस्कारों की भीनी सी झलक भी यदि इसमें कहीं है, तो यही मेरी कृतार्थता है। मेरे विनम्र प्रणाम उन्हें निवेदित हैं।

मैं अपनी बात समाप्त कर रहा हूँ। पर मन एक प्रश्न करता है—पूज्य सरकार जी के यहाँ कई बार आया और रहा हूँ। आज भी पूरे पन्द्रह दिन से हूँ। पर कभी भी यह बात मन में नहीं आई, जो आज लक्ष्मी सम्बन्धी प्रसग में मन मुझसे पूछ रहा है—

अपने और पराये सभी के प्रति जैसा स्नेह और सद्भाव, सयम और सुमति सरलता, उदारता, सरसता और मृदुलता इस परिवार के छोटे छोटे बच्चों से लेकर वयोवृद्धों तक में है। क्या श्री लक्ष्मी को अचचल बनाने के लिए इसके अतिरिक्त किसी और विशेष प्रकार की पारिवारिकता चाहिए !

मन के इस प्रश्न के आगे मुझे मौन हो जाना पड़ता है। क्या कहूँ !

सबको सन्मति दे भगवान।

वैशाखी पूर्णिमा
सं० २०१८ वि०

हरगोविन्द

द्वितीया वृत्ति की बात

जिस लेखक अथवा प्रकाशक को अभी कहीं-किसी पंक्ति में बैठने का ठिकाना भी न मिला हो, नौ महीने में ही उसकी किसी पुस्तक के दूसरे संस्करण का संयोग आजाय, यह एक आश्चर्य की सी ही बात है, प्रसन्नता और सन्तोष तो उसमें है ही। जिसके लिए अपने सहृदय समीक्षकों और प्रेमी पाठकों का आभारी हूँ। उन्हीं सबकी कृपा का प्रसाद इस सुयोग या संयोग को मानता हूँ। शुभैषी गुरुजनों का स्नेहानुग्रह और उनकी सेवा में मेरे विनम्र प्रणाम तो मेरी सिद्धि के मूल में ही निहित और निवेदित है। इसका कहना ही क्या!

मेरे परम स्नेही मित्र पं० शिव सम्पत्तिशर्मा कालपी की पत्नी ने लक्ष्मी को पढ़कर मुझे लिखा था—"लक्ष्मी की कहानियों ने मेरे जीवन में एक नया आलोक दिया है। नई दिशा दी है।" हो सकता है उनकी यह बात मेरे प्रति उनके अपने स्नेह के कारण हो, पर मित्रवर पं० भगवतनारायण जी शुक्ल के कथनानुसार लक्ष्मी के लेखन और प्रकाशन ने मेरे जीवन को एक नई गति दी है। २५ वर्ष पूर्व छोड़े अपने परम्परागत किशानी के धंधे की ओर मेरा मन गया है। और मैं फिर अपने पुराने खेत की मेंड पर बैठकर गाने, गुन-गुनाने लगा हूँ—'मेरी राकर में रामजी रंग बरसें'। मैं अपने शुभैषी वकील मित्र की बात को स्वीकारता हुआ पाठकों के साक्ष्य में कहता हूँ कि परोक्ष में ही सही पर मेरे फिर से किसान बनने में निश्चयपूर्वक भगवान के उस आदेश की प्रेरणा है, जिसे मैंने लक्ष्मी में लिखा है—

'अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व। वित्ते रमस्व बहुमन्यमान ॥'

हे मनुष्य पासों से न खेल। खेती आदि उत्पादन के अन्य पवित्र कार्यों में लग और उनसे जो प्राप्ति हो उसी में अपने श्रम की सफलता मान उत्तरोत्तर उन्नति की ओर बढ़ता चल।

मेरी पत्नी और पौत्री मंगला दोनों ही के मनों में लक्ष्मी के मेरे लिखित स्वरूप पर अनुराग और आस्था है। इस वर्ष दिवाली के पूजन के अवसर पर जब हम लोगों ने जगन्माता लक्ष्मी के अन्य प्रतीकों की अर्चना की थी तब उन्होंने लक्ष्मी की एक प्रति का पूजन भी श्रद्धा के साथ कराया था, मेरे मन को भी इससे

अपने व्यस्त कार्यक्रमों में भी इन्हें देखा पढ़ा और अपने स्नेह का बल दिया। और उसी प्रकार श्रद्धास्पद् डा० श्रीवासुदेव शरण जी अग्रवाल ने अपनी शारीरिक अस्वस्थता में भी इन्हें देखा और स्थापना रूप में लक्ष्मी के सम्बन्ध में अपने अनुरूप विवेचना की इसके लिए क्या कहूँ! इन सबके स्नेह का बल मेरे साथ है, मैं उनके निकट हूँ, यही मेरे लिए बहुत है। अपने सकुचाए स्वर और झुके मस्तक से उन्हें प्रणाम ही कर सकता हूँ।

जिन पत्र सम्पादकों ने समय समय पर इन कहानियों को अपने पत्रों में प्रकाशित कर मुझे उत्साहित किया उसके लिए उन सब का आभारी हूँ।

पशु पक्षियों में तो संगति का प्रभाव आता ही है, पर कहा जाता है, 'चन्दन तरु की बास ते सब वन चन्दन होत' अस्तु अपने जिन शुभैषी गुरुजनों के निकट नित्य बैठता उठता और बतयाता हूँ, उनके संस्कारों की झीनी सी झलक भी यदि इसमें कहीं है, तो यही मेरी कृतार्थता है। मेरे विनम्र प्रणाम उन्हें निवदित हैं।

मैं अपनी बात समाप्त कर रहा हूँ। पर मन एक प्रश्न करता है—पूज्य सरकार जी के यहाँ कई बार आया और रहा हूँ। आज भी पूरे पन्द्रह दिन से हूँ। पर कभी भी यह बात मन में नहीं आई, जो आज लक्ष्मी सम्बन्धी प्रसंग में मन मुझसे पूछ रहा है —

अपने और पराये सभी के प्रति जैसा स्नेह और सद्भाव, संयम और सुमति सरलता, उदारता, सरसता और मृदुलता इस परिवार के छोटे छोटे बच्चों से लेकर वयोवृद्धों तक में है। क्या श्री लक्ष्मी को अचचल बनाने के लिए इसके अतिरिक्त किसी और विशेष प्रकार की पारिवारिकता चाहिए?

मन के इस प्रश्न के आगे मुझे मौन हो जाना पड़ता है। क्या कहूँ!

सबको सन्मति दे भगवान।

वैशाखी पूर्णिमा
सं० २०१८ वि०

हरगोविन्द

द्वितीया वृत्ति की बात

जिस लेखक अथवा प्रकाशक को अभी कहीं किसी पंक्ति में बैठने का ठिकाना भी न मिला हो, नौ महीने में ही उसकी किसी पुस्तक के दूसरे संस्करण का संयोग आजाय, यह एक आश्चर्य की सी ही बात है, प्रसन्नता और सन्तोष तो उसमें है ही। जिसके लिए अपने सहृदय समीक्षकों और प्रेमी पाठकों का आभारी हूँ। उन्हीं सबकी कृपा का प्रसाद इस सुयोग या संयोग को मानता हूँ। शुभैषी गुरुजनों का स्नेहानुग्रह और उनकी सेवा में मेरे विनम्र प्रणाम तो मेरी सिद्धि के मूल में ही निहित और निवेदित है। इसका कहना ही क्या!

मेरे परम स्नेही मित्र पं० शिव सम्पत्तिशर्मा कालपी की पत्नी ने लक्ष्मी को पढ़कर मुझे लिखा था—"लक्ष्मी की कहानियों ने मेरे जीवन में एक नया आलोक दिया है। नई दिशा दी है।" हो सकता है उनकी यह बात मेरे प्रति उनके अपने स्नेह के कारण हो, पर मित्रवर पं० भगवतनारायण जी शुक्ल के कथनानुसार लक्ष्मी के लेखन और प्रकाशन ने मेरे जीवन को एक नइ गति दी है। २५ वर्ष पूर्व छोड़े अपने परम्परागत किसानी के धंधे की ओर मेरा मन गया है। और मैं फिर अपने पुराने खेत की मेंड़ पर बैठकर गाने, गुन-गुनाने लगा हूँ—'मेरी चाकर में रामजी रंग बरसे'। मैं अपने शुभैषी वकील मित्र की बात को सकारता हुआ पाठकों के साक्ष्य में कहता हूँ कि परोक्ष में ही सही पर मेरे फिर से किसान बनने में निश्चयपूर्वक भगवान के उस आदेश की प्रेरणा है, जिसे मैंने लक्ष्मी में लिखा है—

'अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व। वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः ॥

हे मनुष्य पासों से न खेल। खेती आदि उत्पादन के अन्य पवित्र कार्यों में लग और उससे जो प्राप्ति हो उसी में अपने श्रम की सफलता मान उत्तरोत्तर उन्नति की ओर बढ़ता चल।

मेरी पत्नी और पौत्री मंगला दोनों ही के मनों में लक्ष्मी के मेरे लिखित स्वरूप पर अनुराग और आस्था है। इस वर्ष दिवाली के पूजन के अवसर पर जब हम लोगों ने जगन्माता लक्ष्मी के अन्य प्रतीकों की अर्चना की थी तब उन्होंने लक्ष्मी की एक प्रति का पूजन भी श्रद्धा के साथ कराया था, मेरे मन को भी इससे

सन्तोष मिला था, और आज जब यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ तब भीतर ही भीतर कोई कहता है—तुमने उस दिन जो लक्ष्मी की एक प्रति का पूजन किया था। तुम्हारी उस पूजा में बूँद में समुद्र की भाँति लक्ष्मी के विश्वरूप की वन्दना निहित है। कितने ही देवताओं और ऋषियों का पूजन उससे हुआ है, कितने ही पुरखों का तर्पण उससे हुआ है। इस अन्तर्बोध पर मैं अपने उस अलक्ष्य द्रष्टा के साथ अपने सभी देवताओं, ऋषियों और पुरखाओं को प्रणाम करता हूँ, उनके स्नेह बल की कामना करता हूँ।

पहले संस्करण के पश्चात् लक्ष्मी सम्बन्धी कुछ और गाथाएँ प्राप्त हुई थीं जिन्हें इस संस्करण में देना चाहता था, पर यह संस्करण इतने उतावलेपन में हो रहा है कि पुरानी बातों को ही समय पर दे सकना भारी पड़ रहा है, ऐसी स्थिति में उन नई बातों को आगे की आशा पर रोक रहा हूँ। विश्वास है उदार पाठक इस असमर्थता के लिए क्षमा कर लक्ष्मी के उपस्थित रूप को ही पहले की भाँति अपनाएँगे, इसमें भी वही श्रद्धा है। वही सन्देश है। वही अन्न है और वही मन है।

सीता निवास
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस ५
बापू निर्वाण दिवस
१९६२ ई०

हरगोविन्द

स्थापना

श्री हरगोविन्द जी गुप्त लोकवार्ता के पुराने प्रेमी हैं। लक्ष्मी सम्बन्धी चौदह कहानियों का उनके द्वारा किया हुआ यह संग्रह सर्वथा स्वागत के योग्य है। कुछ कहानियाँ लोकवार्ता से ली गई हैं और कुछ पुराण महाभारत से। लोक-साहित्य की सामग्री तो देखते देखते धुँधली होती जा रही है। समय रहते, उसका संग्रह कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता है, जो लगन से इस कार्य का सम्पादन कर दें।

भारतीय लोकवार्ता शास्त्र का महत्त्व अभी पूरी तरह पहचाना नहीं गया है। वस्तुत तो भारतीय संस्कृति की जो महती धारा है लोक और वेद उसके दो किनारे हैं। 'लोके वेदे च' सूत्र की कुञ्जी से ही भारतीय संस्कृति के मर्म का ताला खुल सकता है। छान बीन करने से पता चलता है कि वैदिक युग में ही जब एक ओर सृष्टि विद्या के तत्वों की व्याख्या हो रही थी, तभी उन विषयों को लेकर लोक के शिक्षण एवं अनुरंजन के लिए कहानियों के रूप में ढाला जा रहा था। इस तथ्य को एक बार हृदयगम कर लेने पर उन कहानियों का और उनसे सम्बन्धित प्रतीकों का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है।

उदाहरण के लिए करवा चौथ की कहानी है। इसमें करवे का पूजन तो व्रत का बाह्य रूप है, पर इसके पीछे एक वैदिक प्रतीक भी छिपा है। जल पूर्ण घट की संज्ञा करवा है जिसे संस्कृत म करक कहते हैं। यह समस्त विश्व जिस स्रोत से उत्पन्न हुआ है, उसे वेद और पुराणों में सलिल या जल कहा गया है। इसी तत्व के सहारा से इस विश्व का निर्माण होता है। जो तत्त्व मूल में एक था, वह विश्वरचना में त्रिक भाव में आ जाता है। यही एक कलश के चार रूप हैं, एक निर्गुण और तीन सगुण कहे जाते हैं। जिस समय वेद के मंत्रों में 'एक चमस चतुर कृणोतन' इस प्रकार ऋषि कह रहे थे, उसी युग में करवा चौथ के व्रत और कहानी का जन्म हुआ होगा। ऐसे ही शकट, नाग पचमी आदि की कहानियाँ हैं। इन्हें कालान्तर में व्रतावदान

कहा जाने लगा। अवदान का अर्थ था—कहानी और व्रत उन धार्मिक व्यवहारों को कहते थे जिनकी मान्यता घर गृहस्थी में होती थी और विशेषत स्त्री-वर्ग के द्वारा जिनके सम्बन्ध में कुछ पूजा-पाठ के साथ व्रत या उपवास रखा जाता था। हिन्दू घरों में जो तीज त्योहार प्रचलित हैं, उनमें पर्याप्त संख्या व्रत उपवासों की है और प्राय प्रत्येक के साथ उनकी कहानी या अवदान भी जुड़े हैं। ऐसे व्रतावदानों का संग्रह लोक-वार्ता साहित्य का अंग है और उनके प्रतीकों के ठीक अर्थों की पहचान यह उस शास्त्र के अनुशीलन को ऊँचे धरातल पर उठाना है। यह कार्य तुलनात्मक दृष्टि से जब अनेक क्षेत्रों में सम्पन्न किया जायेगा तो भारतीय संस्कृति की जो गहराई है, उसका मर्म अधिक स्पष्ट हो सकेगा। राजस्थान, मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण कोशल, उड़ीसा, बंगाल, बिहार, नेपाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब और काश्मीर इन सब क्षेत्रों में कहानी के भंडार भरे हैं। लोक-वार्ता शास्त्रियों को उनका उद्धार करना चाहिये।

लक्ष्मी देवी भारतीय गृहस्थ की राष्ट्रीय देवी हैं। लक्ष्मी विष्णु की पत्नी हैं। यह मान्यता यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में पाई जाती है। इस से ज्ञात होता है कि लक्ष्मी सम्बन्धी लोक विश्वास की पृष्ठभूमि वैदिक थी। एक ओर सृष्टि के अधिदेवता विष्णु कहे गये हैं। देवाधिदेव ईश्वर का यह स्वरूप जो विश्वगोचर है, अर्थात् विश्व में सर्वत्र व्याप्त है, उसे विष्णु कहते हैं। उसकी जो शक्ति है, वह लक्ष्मी कहलाई। जिस समय प्रलय होता है विष्णु सब लोकों को अपनी कुक्षि में समेट कर योग निद्रा में लीन हो जाते हैं। इसे पुराणों में एकार्णव विधि कहा है। पुन जब काल की प्रेरणा से सृष्टि का नया क्रम चलने को होता है, तो जो निद्राविष्णु के शरीर में व्याप्त थी, वह उन्हें छोड़ देती है और विष्णु के जागरण से सृष्टि का आरम्भ होता है। उस समय विष्णु को जिस तत्व की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, वह उनकी शक्ति लक्ष्मी है। एक अर्णव या महा समुद्र में सोते हुए विष्णु की जो शक्ति विश्व रचना में क्रियान्वित होती है, वही लक्ष्मी है।

पञ्च भूतों का नाम ही विश्व है। यह समस्त विश्व और इसके जितने भी पदार्थ हैं, वही सब एक एक लक्ष्म या चिह्न हैं और इस रूप में लक्ष्मी उसी का प्रतीक है। तन्त्र की दृष्टि से लक्ष्मी को श्री-लक्ष्मी भी कहा गया है। जो पञ्च भूतों की रचना है वह लक्ष्मी है और जो उसके भीतर रहने वाली प्राण और मन की शक्ति है, उसे श्री कहते हैं। यही श्री लक्ष्मी का जोड़ा है। इसी को

ध्यान में रख कर यजुर्वेद के पुरुषसूक्त में कहा है—"श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ"।—अर्थात् श्री और लक्ष्मी दोनों विष्णु की पत्नी या शक्तियाँ हैं। विराट पुरुष से एक ओर मन और प्राण तथा दूसरी ओर स्थूल पञ्च भूतों का विकास होता है और प्रत्येक रचना में ये तीनों तत्व विद्यमान रहते हैं। यही श्री-लक्ष्मी का सम्मिलित रूप है। इसे ही लोक में केवल 'लक्ष्मी' इस नाम से भी पुकारा जाता है।

लक्ष्मी का जन्म समुद्र के मथन से हुआ। इस आख्यान का रहस्य भी यही है। जलों अर्थात् सृष्टि के मूल कारण के अभ्यन्तर से जो पञ्चभूत बाहर प्रकट होते हैं, उनकी संज्ञा पुष्कर या कमल है। उसी कमल पर लक्ष्मी जी का दृढ़ आसन माना गया है।

लक्ष्मी के स्वरूप में, जैसा यह लोक में प्रचलित है, उन्हें अभिषेक कराने वाले दिग्गज या हाथियों का भी स्थान है। ये दिग्गज तत्व देश और काल के प्रतीक हैं। दिग् देश काल इनका एक दूसरे से विकास होता है। इनका विश्व के साथ नित्यसम्बन्ध है। जिस महार्णव के मथन से लक्ष्मी का जन्म हुआ, उसी के अमृत जल की धारा नित्य इस विश्व में आती रहती है। यही विश्व की शाश्वत स्थिति है। उस समुद्र को सोम का समुद्र कहते हैं। सोम ही अमृत है। वही दिग्गजों के घटों में भरा हुआ है जिससे वे नित्य लक्ष्मी का अभिषेक कराते हैं। जैसे समस्त विश्व को, वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति की लक्ष्मी को यह जल सदा मिलता रहता है। इसी की अमृत बूँदों से जीवन में हरियाली आती है। स्थूल चाँदी और सोने को लक्ष्मी का स्वरूप माना जाता है। यह भी प्रतीक मात्र है। प्राण को सुवर्ण और पञ्चभूतों को चाँदी कहा जाता है। प्राण और भूतों की समृद्धि ही जीवन है। यही श्री लक्ष्मी का समग्र रूप है।

इस संग्रह की लोक कहानी "लक्ष्मी की निवाचा" सोने और चांदी के इस प्रतीक को स्फुट करती है। शरीर से किया हुआ परिश्रम या प्राण तत्त्व ही सच्चा सुवर्ण है। उसी कंचन से गाँवों में रहनेवाले कृषकों के शरीर सुशोभित हैं। उन्हें स्थूल चाँदी-सोने की चिन्ता नहीं होती। उनकी चिन्ता का विषय खेतों में होनेवाले अन्न के वे दाने हैं, जिनसे जीवन धारण किया जाता है। उनके लिए वही सच्ची लक्ष्मी है। रानी जिस हार को लक्ष्मी समझती है, उसमें कृषक को आकर्षण नहीं। यही वृत्ति ग्रामों का स्वास्थ्य या स्वस्थ वृत्त है। लक्ष्मी के स्थूल रूप की जो चाँदी और सोने में दिखाई

कहा जाने लगा। अवदान का अर्थ था—कहानी और व्रत उन धार्मिक व्यवहारों को कहते थे जिनकी मान्यता घर गृहस्थी में होती थी और विशेषत स्त्री वर्ग के द्वारा जिनके सम्बन्ध में कुछ पूजा पाठ के साथ व्रत या उपवास रखा जाता था। हिन्दू घरों में जो तीज त्योहार प्रचलित हैं, उनमें पर्याप्त संख्या व्रत उपवासों की है और प्राय प्रत्येक के साथ उनकी कहानी या अवदान भी जुड़े हैं। ऐसे *व्रतावदानों का संग्रह लोक-वार्ता साहित्य का अंग है* और उनके प्रतीकों के ठीक अर्थों की पहचान यह उस शास्त्र के अनुशीलन को ऊँचे धरातल पर उठाना है। यह कार्य तुलनात्मक दृष्टि से जब अनेक क्षेत्रों में सम्पन्न किया जायेगा तो भारतीय संस्कृति की जो गहराई है, उसका मर्म अधिक स्पष्ट हो सकेगा। राजस्थान, मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण कोशल, उड़ीसा, बगाल, बिहार, नेपाल, उत्तर प्रदेश, पजाब और काश्मीर इन सब क्षेत्रों में कहानी के भडार भरे हैं। लोक-वार्ता शास्त्रियों को उनका उद्धार करना चाहिये।

लक्ष्मी देवी भारतीय गृहस्थ की राष्ट्रीय देवी हैं। लक्ष्मी विष्णु की पत्नी हैं। यह मान्यता यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में पाई जाती है। इस से ज्ञात होता है कि लक्ष्मी सम्बन्धी लोक विश्वास की पृष्ठभूमि वैदिक थी। एक ओर सृष्टि के अधिदेवता विष्णु कहे गये हैं। देवाधिदेव ईश्वर का यह स्वरूप जो विश्वगोचर है, अर्थात् विश्व में सर्वत्र व्याप्त है, उसे विष्णु कहते हैं। उसकी जो शक्ति है, वह लक्ष्मी कहलाई। जिस समय प्रलय होता है विष्णु सब लोकों को अपनी कुक्षि में समेट कर योग निद्रा में लीन हो जाते हैं। इसे पुराणों में एकार्णव विधि कहा है। पुन जब काल की प्रेरणा से सृष्टि का नया क्रम चलने को होता है, तो जो निद्राविष्णु के शरीर में व्याप्त थी, वह उन्हें छोड़ देती है और विष्णु के जागरण से सृष्टि का आरम्भ होता है। उस समय विष्णु को जिस तत्व की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, वह उनकी शक्ति लक्ष्मी है। एक अर्णव या महा समुद्र में सोते हुए विष्णु की जो शक्ति विश्व रचना में क्रियान्वित होती है, वही लक्ष्मी है।

पच भूतों का नाम ही विश्व है। यह समस्त विश्व और इसके जितने भी पदार्थ हैं, वही सब एक एक लक्ष या चिह्न हैं और इस रूप में लक्ष्मी सभी का प्रतीक है। *तत्व की दृष्टि से लक्ष्मी को श्री-लक्ष्मी भी कहा गया है।* जो पच भूतों की रचना है वह लक्ष्मी है और जो उसके भीतर रहने वाली प्राण और मन की शक्ति है, उसे श्री कहते हैं। यही श्री लक्ष्मी का जोड़ा है। इसी को

ध्यान में रख कर यजुर्वेद के पुरुषसूक्त में कहा है—"श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ"।—अर्थात् श्री और लक्ष्मी दोनों विष्णु की पत्नी या शक्तियाँ हैं। विराट पुरुष से एक ओर मन और प्राण तथा दूसरी ओर स्थूल पञ्च भूतों का विकास होता है और प्रत्येक रचना में ये तीनों तत्व विद्यमान रहते हैं। यही श्री-लक्ष्मी का सम्मिलित रूप है। इसे ही लोक में केवल 'लक्ष्मी' इस नाम से भी पुकारा जाता है।

लक्ष्मी का जन्म समुद्र के मथन से हुआ। इस आख्यान का रहस्य भी यही है। जलों अर्थात् सृष्टि के मूल कारण के अभ्यन्तर से जो पचभूत बाहर प्रकट होते हैं, उनकी संज्ञा पुष्कर या कमल है। उसी कमल पर लक्ष्मी जी का दृढ़ आसन माना गया है।

लक्ष्मी के स्वरूप में, जैसा वह लोक में प्रचलित है, उन्हें अभिषेक कराने वाले दिग्गज या हाथियों का भी स्थान है। ये दिग्गज तत्व देश और काल के प्रतीक हैं। दिग् देश काल इनका एक दूसरे से विकास होता है। इनका विश्व के साथ नित्यसम्बन्ध है। जिस महार्णव के मथन से लक्ष्मी का जन्म हुआ, उसी के अमृत जल की धारा नित्य इस विश्व में आती रहती है। यही विश्व की शाश्वत स्थिति है। उस समुद्र को सोम का समुद्र कहते हैं। सोम ही अमृत है। वही दिग्गजों के घटों में भरा हुआ है जिससे वे नित्य लक्ष्मी का अभिषेक कराते हैं। जैसे समस्त विश्व को, वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति की लक्ष्मी को यह जल सदा मिलता रहता है। इसी की अमृत बूँदों से जीवन में हरियाली आती है। स्थूल चाँदी और सोने को लक्ष्मी का स्वरूप माना जाता है। यह भी प्रतीक मात्र है। प्राण को सुवर्ण और पचभूतों को चाँदी कहा जाता है। प्राण और भूतों की समृद्धि ही जीवन है। यही श्री लक्ष्मी का समग्र रूप है।

इस समृद्ध की लोक कहानी "लक्ष्मी की त्रिवाचा" सोने और चाँदी के इस प्रतीक को स्फुट करती है। शरीर से किया हुआ परिश्रम या प्राण तत्त्व ही सच्चा सुवर्ण है। उसी कंचन से गाँवों में रहनेवाले कृषकों के शरीर सुशोभित हैं। उन्हें स्थूल चाँदी-सोने की चिन्ता नहीं होती। उनकी चिन्ता का विषय खेतों में होनेवाले अन्न के वे दाने हैं, जिनसे जीवन धारण किया जाता है। उनके लिए वही सच्ची लक्ष्मी है। रानी जिस हार को लक्ष्मी समझती है, उसमें कृषक को आकर्षण नहीं। यही वृत्ति ग्रामों का स्वास्थ्य या स्वस्थ वृत्त है। लक्ष्मी के स्थूल रूप की जो चाँदी और सोने में दिखाई

देता है, सबसे बड़ी विडम्बना उसकी चंचलता है। पुरुष के गाढ़े पसीने की कमाई तो जीवन में टिकती है, पर यदि उसका मन चाँदी सोने के ढेर में भटक जाय तो वह उस ढेर को टिकाऊ बना कर नहीं रख सकता। वह ढेर तो नष्ट होता ही है, उसके साथ किसान का मन भी नष्ट हो जाता है। धन के विषय में यह मोह कभी हमारे मन को जकड़ न ले और लक्ष्मी का जो शुद्ध रूप है, उसी की आराधना घर गृहस्थी में बनी रहे और मनुष्य की बुद्धि एवं शारीरिक श्रम का अभ्यास कभी उसे न छोड़े यही लक्ष्मी की निशानी है। किसान की स्त्री ने लक्ष्मी का अपने घर में प्रवेश कराने के पहिले उससे यही माँगा था।

इस प्रकार की कहानियाँ लोक मंगल की खान हैं। भारतीय किसान की पैनी बुद्धि उनकी सीख को चट पहचान लेती है। जिस कर्म परायण सीधी सादी बुद्धि से इन कहानियों का निर्माण हुआ, ईश्वर करे वह बुद्धि सकुशल बनी रहे। उस प्रकार की बुद्धि ही वह दीप ज्योति है जिसकी लौ किसान के घर में जलती हुई देखकर लक्ष्मी जी ने वहां रहने का आग्रह किया। ऐसे दीपों की पंक्ति का पर्व ही दीपावली है। उस दिन लक्ष्मी प्रत्येक ऐसे घर में निवास करने आती हैं जहाँ बुद्धि का दीप चमकता है। मानुषी जीवन के जितने कल्याण हैं वे सब सत्यात्मक श्रम से ही प्राप्त किए जाते हैं। उन भद्र या कल्याणों की देवी को भद्रा कहते हैं। यह भी लक्ष्मी का ही एक रूप है। जो पुण्य लक्ष्मी है, वह हमारे घरों में बसे, और जो अभद्र या अलक्ष्मी है वह दूर हट जाय, यही मनुष्य की सच्ची प्रार्थना है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय —वासुदेव शरण

प्रिय हरगोविन्दजी,

पुस्तक देख गया। बहुत ही रोचक है, मुझे बहुत पसन्द आयी। टाइप की कई गल्तियाँ हैं विशेषतः संस्कृत के अवतरणों में, मैंने कहीं कहीं तो 'ऽ' चिह्न कर दिया है पर सब जगह नहीं कर पाया, पढ़ने के प्रवाह में बह गया।

(डा० श्री) सम्पूर्णानन्द,

मैंने आपकी भेजी कहानियाँ देखी हैं। कहानियाँ अच्छी हैं। और उपदेशप्रद तो हैं ही।

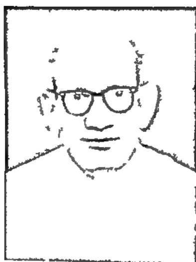
(आचार्य श्री) हजारी प्रसाद द्विवेदी,

कहानी संग्रह 'लक्ष्मी' देखा। कहानियों का उद्देश्य मनोरञ्जन के साथ-साथ मानवता के कतिपय उच्च गुणों को प्रतिपादित करना है। ऐसा करने में वे सफल हुए हैं।

(राय श्री) कृष्णदास

अनुक्रमणिका

—



सुप्रसिद्ध उद्योगपति
श्री रामेश्वरजी टाँटिया एम० पी०
सरदार शहर (बीकानेर)

"इन रस-मयी कथाओ सा ही सरस हृदय है जिन का,
उन्हीं टाँटिया जी को सादर अर्पण इस भजन का।"

समस्त संपत्सुखदाम्महाश्रियं,
समस्त सौभाग्यकरीं महाश्रियम्।
समस्त कल्याणकरीं महाश्रियम्,
भजाम्यहं ज्ञानकरीं महाश्रियम्।
विज्ञान सम्पत्सुखदां सनातनीम्,
विचित्र वाग्भूति करीं मनोहराम्।
अनन्तसम्मोदसुखप्रदायिनीम्,
नामाम्यहं भूतिकरीं हरिप्रियाम्।
समस्तभूतांतर संस्थिता त्वं,
समस्तभूतेश्वरि ! विश्वरूपे !!
तन्नास्ति यत्त्वद्व्यतिरिक्तवस्तु,
त्वत्पादपद्मं प्रणमाम्यहं श्री।
दारिद्र्य दुःखौघतमोपहंत्रि,
त्वत्पाद पद्मं मयि सन्निधत्स्व।
दीनार्तिविच्छेदन हेतु भूतैः
कृपाकटाक्षैरभिषिंच मां श्री।
अम्ब ! प्रसीद करुणा सुधयार्द्र दृष्ट्या,
मां त्वत्कृपाद्रविणगेहमिमं कुरुष्व।
आलोक्य प्रणत हृद्गतशोकहंत्रि !
त्वत्पादपद्मयुगलं प्रणमाम्यहं श्री।

बहू-लक्ष्मी

किसी गाँव में एक किसान परिवार था। पीढ़ियों की भलमनसाहत उसके घर में थी। बड़े बड़े खेत, कुआँ, बाग और दुधारू गाय भैंसें और बैलों के जुँआड़े उसके थे। कई गाँवों में साहूकारी थी। थाना-कचहरी और पंच पंचायतों में उसकी बात मानी जाती थी। गाँव के ही नहीं आस पास के सभी गाँवों के सब छोटे बड़े उसे कक्का कहते थे। नाम तो शायद ही कोई जानते हों। किसी सुहृतो की आत्मा से दी हुई 'दूधों नाओ, पूतों फलो' की आशीष साकार रूप से उसके घर में फल रही थी। कसर एक ही थी कि इस इतनी सम्पत्ति को बिलसने के लिए केवल एक ही सन्तान थी। पर इस बात से माँ बाप के मन में दुःख न था। जब भी बात आती वे यही कहते—

'चन्द एक सब तम हरै नहिं उड़गन के वृन्द।'

समय आने पर उस समय की परम्परा के अनुसार सात वर्ष की अवस्था में ही बेटे का ब्याह हो गया। लोगों का बरसों का व्योहार बढ़ा था और एक ही बेटा था, इसलिए कक्का ने दिल खोलकर खर्च किया, कई पगतें हुई, और बारात तो ऐसी गई कि जैसे स्त्रियाँ गाती हैं—

'इक लख हथिया, सवा लाख घुड़ला पैदल ओर न छोर भलें जू।
देख बरात कपे राजा बाबुल, अब बेटी रहत कुँआरि भलें जू'॥

लड़की वाला भी इनसे बड़ा नहीं तो हलका भी न था। उसने भी मन से काम किया। खूब धूम धाम रही। देखनेवालों ने कहा कि ऐसी हुमक का ब्याह कई पीढ़ियों से नहीं हुआ, आगे की कौन कहे। ब्याह में और रँग रस तो खूब रहा पर कुरस की एक ही बात आई कि अन्त में बहू की बिदा को लेकर तना तनी बढ़ गई। लड़के वाले बहू को, बिदा कराना चाहते थे, और लड़की वालों का कहना था कि पाँच वर्ष की बिटिया की बिदा नहीं होगी। सातवीं साल में गौना होगा। इसी बात पर बात चढ़ी कि लड़के वाले भी बिना बँध खोले चले आये। और लड़की वालों ने भी नहीं मनाया। इसी को देख देखने वालों ने कहा—

'रस राखि बिदा करवी कठिनाई।'

सयोग की बात कि ब्याह के दो तीन साल पीछे ही कक्का ने इस अपार धन-वैभव की ओर से आँखें फेर लीं। कक्को और भैया वे करिया की नाव की तरह मँझधार में डगमगाते रह गये।

लोगों ने धीरज बँधाया। हिम्मत से काम सँभालने का कहा, पर आप जानते हैं कि पुरुष पुरुष की माया और विरछ विरछ की छाया होती है। कक्का के जाते कुछ ही दिनों में उस वैभव को पंख जमें और जैसा कि कौतूहल लाने के लिए कहानी में कहा जाता है—'हाथी हथमार बिलाने, घोड़ा घुड़सार बिलाने' वैसे ही कक्का के पसीने की कमाई बिला उठी। और कुछ ही दिनों में हालत यह हुई कि जहाँ कभी खजूरे का दिया और अगयाने की राख ठण्डी न होती थी, आग की बास कठिनाई से आती। भैया तो अबोध था ही, पर कक्को भी वैभव में फँसे रहने के कारण गृहस्थी चलाने में अनजान थीं। हाथ जनम से ऊँचा रहा था। हल्की बात या हल्का काम करना जानती न थीं। पीढ़ियों का बड़पन आज उनके लिए सकट बन रहा था। खेत-कुँआ ही नहीं धीरे धीरे घर-गृहस्थी की चीजें भी बिक चुकी थीं। कहीं कोई आसरा उनके लिए अब न था। सब ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखता था।

ऐसे ही सकट के दिनों में एक दिन भैया के मन में आया और हसिया उठा घसियारों के साथ चल दिया। बाग में जा आठ दस पूरे काटे और गाँव में लाकर बेच दिए। पैसे जो मिले सो सबके सब कक्को के हाथ पर जा धरे।

कक्को ने भैया के हाथ में पैसा देखे कि सन्नाटे में आकर रह गईं। सोचने लगी कहीं भूख से परेशान हो किसी चोरी अमारग में तो पाँव नहीं धरने लगा। पर जब भैया ने सौंग ध खाकर विश्वास दिलाया, और पैसा आने की बात बताई तब उसकी आँखों में आँसू भर आए। उन्हीं भरी आँखों बेटे का मुँह देखा, और पैसे सँभाल कर रख दिये।

उस दिन से भैया का रोज का क्रम बन गया कि दिन निकलने के पहले ही हाथ-मुँह धो हँसिया कलेवा उठा चला जाता, और दिन डूबने के पहिले ही पैसे ले घर आ जाता। कक्को के मन मे लाड़ प्यार से पले बेटे के घसियारा बनने के कलक के साथ इस बात का सन्तोष भी था कि बेटा किसी तरह पेट तो भरने लगा।

इस प्रकार रोज-रोज साथ जाने से पुराने गिल्ली-डण्डा के साथियों के स्थान पर नये खून पसीना बहाने वाले साथी मिले, नया हेल मेल बढ़ा, और थकने बैठने पर दुःख सुख की बातें उनमें होने लगीं।

एक दिन एक साथी ने हँसते हँसते कहा—क्यों रे नकटे, डुकरिया से चकिया घिसिटवाते लाज नहीं लगती, जो बैयर को मायके में छोड़े है।

भैया अब निरा बच्चा नहीं था, सयाना हो चुका था। हँसी मजाक भी करता था और समझदारी की बात भी। पहले तो उसने साथी की बात को परिहास समझा और परिहास में ही टाल दिया। पर जब साथी ने दृढ़ता के साथ कहा, नहीं रे हँसी नहीं करता, आज ही मेरे घर बातें हो रही थीं कि भैया का ब्याह बहुत ही छोटे में हो चुका था। बड़ी छबीली बहू तेरी है सब बता रहे थे। विश्वास न हो तो ककी से पूछ लेना।

इतने में ही तमाखू की चिलम के साथ ही बात भी ठण्डी पड़ी और सब अपने अपने बोझ उठा चल दिये।

घर आकर भैया ने ककी से पूछा—क्या मेरा ब्याह हो गया है?

ककी ने पुरानी सुधि आते ही ठण्डी साँस ली, और कहा—बेटा तेरा ब्याह तो बरसों पहले हो चुका है पर अब इन बातों में कोई सार नहीं तेरे ससुर बड़े जिद्दी आदमी हैं। पैसे की गरमी है। तेरे ब्याह में ही बिदा के ऊपर से ऐसी बात बिगड़ी कि ठिकाने न आई। और जब कक्का के आगे कुछ न हो सका, तब अब होगा ही क्या? अब तो उन्हें तुझे अपना दामाद बताने में ही लाज आयगी।

ककी की बात सुन भैया उठा और मुहल्ले में बैठने चला गया। जब आया तब बोला, मैं कल ससुराल जाऊँगा। देखूँ क्या होता है।

ककी ने पोपले मुँह से थूक उड़ाते हुए कहा—नहीं रे, भूल कर भी वहाँ पहाड़ से मूँड़ मारने न जाना। जब भगवान समय लायेंगे, तब एक की जगह चार ब्याह हो जायेंगे।

इतना कह दोनों अपनी अपनी साथरी पर जा सोये। और जैसे ही मुर्गे ने बाँग दी कि भैया उठा और रोज की तरह हँसिया कलेवा उठा चलता बना। भैया के चले जाने पर ककी का ममता भरा मन दिन भर सोचमूनतम् में पड़ा रहा, और जब सन्ध्या समय वह उसकी गैल देख रही थी तभी एक साथी ने कहा—ककी, भैया, जिदा मरावन गए, उनकी गैल न देखियो।

घसियारे की बात सुनते ही बक्को को पसीना आ गया। वे वैसे ही उठीं और अपनी साथरी पर तीन का आँक बनकर जा पड़ीं। किससे क्या कहतीं। 'अपनी जाँघ उघारिए, आपहिं मरिए लाज।'

इधर बक्कों का तो यह हाल हुआ और उधर भैया, दूसरे गाँव में घास बेच, दिन डूबते-डूबते, ससुराल के द्वारे जा खड़े हुए।

ससुरालवाले बड़े आदमी थे। कितने ही कर्ता कामदार उनके यहाँ काम करते थे। जिस समय यह पहुँचे कामदार लोग अपना दिन भर का काम सँभला घर जा रहे थे। बड़ी भीड़ द्वारे पर थी। यह भी जाकर वहीं एक किनारे खड़े हो गए। जब सब जा चुके और यह वहीं के वहीं खड़े रहे, तब एक वृद्ध सज्जन ने इन्हें देखकर पूछा—क्या बात है रे, कैसे खड़ा है ?

वृद्ध की बात पूरी होते ही भैया ने सकोच भरे स्वर में कहा मालिक से बात करनी थी।

भैया की बात पूरी होते ही ऊपर चबूतरे पर खड़े वृद्ध ने दो तीन बार घूर घूर कर इन्हें देखा और कहा—कहाँ का, कौन है तू ?

वृद्ध का प्रश्न पूरा होते ही भैया ने अपने गाँव और पिता का नाम बताया। जिसे सुनते ही वृद्ध की त्योरी चढ़ गई और उन्होंने ललकारते हुए कहा—हाड़ तुड़वाना हो तो यहाँ खड़े रहो, नहीं तो चुप चाप चले जाओ। बात करने की जरूरत नहीं है।

वृद्ध के सुनते ही इन्होंने धीरे से कहा—दादा ! जिनसे आपकी लगी थी, वे चले गए। वह बात चली गई। अब पिछली बातें भूलकर मेरी ओर देखिए। बात तो बराबरीवालों से होती है।

भैया कुछ और भी कहना चाहते थे कि वृद्ध ने बीच में ही रोककर कहा—देखो, एक बार कह चुका हूँ, चुपचाप चले जाओ। नहीं तो ठीक न होगा। वृद्ध सज्जन की तेजी भरी बात अभी चल ही रही थी कि भीतर से खाँसती हुई एक वृद्धा आई और बीच में पड़कर बोली—मैं सब सुन रही हूँ, इन कुत्तों के मुँह लगने लगाने में कोई फायदा नहीं, तुम भीतर चलो, जमादार सब निबट लेगा। नकटे कहीं के न अपना नामोसी का डर न पराई का।

इतना कह वृद्धा ने वृद्ध का हाथ पकड़ और किवाड़ लगा भीतर ले गई। और भैया दरवाजे जहाँ के तहाँ खड़े टुकुर मुकुर देखते रह गए। यह वही दरवाजा था जहाँ एक दिन भैया मेघों की तरह गरजते

बादलों की धुन में धूम धाम के साथ पालकी में बैठकर आए थे। उनका राई-नोन उतारा गया था। और आज नकटा, कुत्ता बनाकर धमकाया जा रहा है। वही ससुर जी हैं, वही दरवाजा है, और वही भैया हैं। पर समय दूसरा है, ऐसे ही समय को देखकर कवि ने कहा है—

पुरुष बली नहिं होत है, समय होत बलवान।
भीलन लूटीं गोपिका, वेइ अर्जुन, वेइ बान॥

किवाड़ बन्द होने पर भैया गेल में खड़े इधर उधर देखते सोच रहे थे कि कहाँ जाएँ, क्या करें। मुहल्ले के आस पास के सब घर इनकी ससुरालवालों के ही थे। जो सब बन्द थे। किसी में भुस चारा भरा था, किसी मे अनाज। इस प्रकार वहाँ कहीं से किसी के आने-जाने या बात करने की आशा आशंका न थी। भैया अपने सोच विचार में खड़े ही थे कि ऊपर की मँझरी में से एक ककड़ इनके सिर पर गिरा और जैसे ही यह ऊपर की ओर आँखें लगा देखने लगे कि झँझरी मे से निकले हाथ ने छिड़िया मे आने का संकेत किया और जहाँ का तहाँ छिप गया।

बहते के लिए तिनके का सहारा बहुत होता है, फिर यह तो हाथ का सहारा था। सकेत के मिलते ही यह छिड़िया की ओर बढे, थोड़े ही बढे कि बगल की खिड़की के किवाड़ की ओट में से किसी ने खाँसकर इन्हें रोका—और जब यह रुके तब एक बिटिया ने आँचल का पल्ला सिर पर डालते हुए कहा—जिसके लिए तुम आए हो वही मैं हूँ। थोड़ा धीरज धरो, समय आने पर सब होगा। यह ब्यालू लो और जाओ।

बात पूरी होते ही भैया ने कहा—अब इस तरह इन हाथों की ब्यालू नहीं करते। अगर रोज रोज परसने जिलाने की बात हो तो बात करो, नहीं तो जैसा सत्यानाश वैसा सवा सत्यानाश।

बिटिया ने इधर उधर झाँककर कहा—इस तरह खरी उचेलने से हाथ ही जलेगा। मेरी गाँठ तुम्हारे साथ जुड़ी है, और जुड़ी रहेगी। मैं भौजाई को बीच में डालकर काम बनाऊँगी। तुम ।

बिटिया की बात अभी चालू ही थी कि किसी ने पीछे से आ उसकी चुटिया मँमकोरते हुए कहा—निरलज्ज, चण्डालिनी, नदी कुए में गिरते-

मरते नहीं बना। सात पीढ़ी के पुरखों की नाक नीची करने के



लिए जीती रही। इतना कह झकझोरनेवाले ने किसी दूसरे हाथ पकड़नेवाले से हाथ छुड़ा बिटिया के हाथ गले की चीजें उतारीं और धक्का दे बाहर करते हुए कहा—जा अब नरक में ही गिरना है तो गिर, पर याद रखना कि कभी जीते जी इस घर की देहरी न चढ़ना। अपना यह काला मुँह न बताना।

इसके बाद झटके से खिड़की के किवाड़ लगे, और सब ओर सन्नाटा छा गया। मुहल्ले में तो कोई था ही नहीं। थोड़ी देर में बिटिया ने आँचल सँभाला और दरवाजे की देहली पर चार आँसू चढ़ाए, माथा टेका और आँचल फेर आँगन से नीचे उतर इशारे से साथी को चलने का सङ्केत किया।

रास्ते में कहीं रुकने बसने की तो बात ही न थी। जिस गाँव जाना था वह भी यहाँ से बहुत दूर न था। दोनों हिम्मत बाँध बढ़े चले और भोर होते-होते गाँव के गोंडे आ पहुँचे।

गोंडे पहुँचने पर भैया ने एक कुएँ की ओर इशारा करते हुए कहा—कहते हैं पहले यह बाग कुआँ सब अपने थे पर अब और के हो चुके हैं। भैया की बात सुनते ही बिटिया ने जो अब आँचल घूँघट मार कर बहू बन चुकी थी, कहा—जब तक अपने थे, अपने पास रहे, अब जिसके हैं, उसके पास हैं। इसमें देख कर कलपने की बात नहीं है। जो अपना होगा अपने साथ रहेगा। इतना कह बहू ने फिर कहा—पहिली पहिली बार सासरे जा रही हूँ, इस प्रकार धोती पहिन कर जाना ठीक न होगा। मैं यहीं बैठती हूँ। तुम घर जा एक लहँगा लुँगरा और पिछौरा भेज देना।

बहू की बात सुन भैया घर गया और कक्को को सारी बात बताई।

कक्को सुनकर सन्न रह गई, क्या करें, क्या न करें। तभी उनके मन में आया और अपने पड़ोसी के घर गई जो अभी भी उनसे अपना पुराना घरोबा बनाए चल रहा था। द्वार पर खड़े पड़ोसी ने जैसे ही इन्हें आते देखा कि दूर से ही बोला—कक्को भोर से कैसे निकल पड़ीं।

कक्को ने दम भरते हुए कहा—बेटा क्या बताऊँ, भैया कल हुलक में आकर ससुराल चला गया, वहाँ ससुरालवालों ने तो अपनी अकड़ में सीधे बात भी न की, पर तुम्हारी बहू को जाने क्या सूझा कि भैया के साथ चली आई। अब धोती पहिने बाहर गाँव बैठी है। सन्देशा भेजा है कि एक लहँगा पिछौरा भेज दो तो बहू बनकर आऊँ। पहिली बार धोती पहिनकर नहीं आऊँगी। बताओ अब क्या करूँ?

कक्को की बात पूरी होते ही पड़ोसी ने कहा—कक्को इसमें सोचने करने की क्या बात है। बहू सतवन्ती थी सो चली आई। आखिर अपने घर तो कभी आना ही था। बिटिया के लिए माँ का घर कैसा ही होने पर भी अपना नहीं होता। अब रही लहँगा सो तुम घर चलो बहू को इस तरह चोरी से घर नहीं आने देंगे। बरैन हाल, गाँव में बुलौआ कराओ, मोंचायना होकर ही बहू भीतर जायगी।

पड़ोसी की बात सुन कक्को जहाँ की तहाँ माटी की मूरत बनी खड़ी रह गई, उनके मन में आया—

घर में नेइयाँ चून चनन को ठाकुर धरीं करायें।
मो दुलनी खों लहँगा नइयाँ कुत्तन भूल सुँ आनें॥

पर उनके कहे बिना ही पड़ोसी ने उनके मन की बात जान ली और कहा—कक्को सकोच न करो। मुझे अच्छी तरह याद है कि कक्का ने और तुमने मेरी बहू आने पर मेरा टीका और बहू का मोंचायना किया था। दादरे भी कराये थे। व्यवहार का यह कर्जा कब तक चढ़ाए रहोगी, आज तो उऋण होने दो? तुम चलो मैं आकर सब करता हूँ।

पड़ोसी की बात सुन कक्को ने उसे अशीषते हुए कहा—बेटा यह सब तो समय की बात है। इतना कह कक्को घर आई और पड़ोसी ने अपनी बहिन को बुलाकर कहा—देखो जिज्जी, कक्को की बहू आकर बाग में बैठी है, तुम एक नया लहँगा-लुगँरा पिछौरा और एक चोल हाथों को

और एक गले को ले कर जाओ बहू को पहिनाना। अपने ऊपर उनका व्योहार चढा है। और एक नाद में चने भिगो दो।

गाँव भर में कक्को का बहू के लेने और मौंचायने का बुलौआ तो जब गया, तब गया, पर उसकी सूचना उसके पहले ही हवा के परों पर बैठ घर घर म पहुँच गई थी। सब खुशी के साथ अपने अपने व्योहार के हिसाब देखने लगे और जिसे जो देना था, उससे कुछ अधिक ही लेकर घर-घर की बहुएँ बिटियाँ लहँगा पहिन, कक्को के द्वारे जा पहुँची।

बरसों पीछे आज कक्को के द्वारे बाजे बजे, आँगन लीपकर चौक पूरा गया, और जब बगिया में बैठी बहू चार बिटियों के साथ आई तब लड़का बहू की गाँठ जोड़ राई नोंन उतार सबने टीका-मौंचायना किया।



सुहागिनों ने ढोलक लगा मगल गीत गाये। कक्को ने भी सबके कहने से घू घट हटा भरी आँखों बहू का मुँह देखा और अपने गले का छटा उतार बहू के गले में पहिना, बहू के पैर छुए। और जब यह सब हो चुका तब, पड़ोसी की बहिन ने सबको भर भर खोवा चने दिए।

इसी बीच पण्डित जी ने पञ्चाग देखकर बताया कि बहुत ही दुर्लभ मुहूर्त में बहू का प्रवेश हुआ है। पराये घर का धूरा होकर भी बहू अपने घर की लक्ष्मी है। पडित जी की बात के साथ ही माथ पड़ोसी ने मौंचायने में आए गहने और रुपया कक्को को देते हुए कहा—लो कक्को, बहू अकेले ही नहीं आई है, साथ में कुछ और भी लाई है।

इसी बीच बुलौए में आई बडी बूढी पुरखिनों के स्वरों से गूँजा—बहू क्या है, पूरी लक्ष्मी है, कक्को के सुकृत फले हैं, सुकृतों की सिद्धि ही

सच्ची लक्ष्मी होती है। धन की क्या है उरिआ की छाया है, भगवान की माया प्रबल है—

रीतीं भरै, भरी ढरकावे। मनसा करै तो फेर भरावे॥

सबकी बात सुनकर कक्को ने सबको हाथ जोड़े और कहा—सब चार पञ्चों की माया है।

लक्ष्मी की त्रिवाचा

किसी से सम्बन्धित न होने पर भी अनहोनी बात की ओर सबका मन जाता है। सभी अपने अपने विचार से उसे देखते परखते हैं। कक्को की बहू जिस ढग से आई थी, कई दिनों तक वह गाँव भर की चर्चा का विषय बनी रही। गैल घाट, कुआँ पनघट, हार खेत जहाँ भी चार व्यक्ति इकट्ठे होते वही चर्चा छिड़ जाती। कोई कहता, बड़ी निलज्ज है जो आदमी की सूरत देखते ही पुरखों की पाग उतार वैसे लगी भगी आई, जैसे चार छ बार की आई गई बड़ी बुढेरू हो। घर गृहस्थी में मन धरा हो। और वहीं कोई—'तिरिया तेल, हमीर हठ' की बात कह कह उठते, तुम क्या जानो, अपने देश धर्म की रीति ही उसने निभाई है। अपने धर्म में भी काठ की हडी होती है, जो एक बार चढ़ी सो चढ़ी। जानते नहीं सीता माता ने बन जात समय क्या कहा था—

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसेहिं नाथ पुरुष बिनु नारी॥

और वहीं कोई तीसरे बात को बदती देख कह उठते, कुछ भी कहो बहू है पूरी लक्ष्मी। अपना सत्त लेकर आई है। तभी तो पाँव पड़ने के साथ ही लक्ष्मी का प्रभाव घर में आ गया। अगर बहू का मोंचायना न होता तो क्या हम-तुम कोई कक्को को मोंचायना देने जाते।

सचमुच बहू ने आते ही घर की काया बदल दी थी। एक दो दिन तो वह सब देखती परखती चुप रही, पर जब कुछ घुल मिल चुकी तब एक दिन सास से कहा—बाई, यह जो रुपया और चीजें मोंचायने में आई हैं, उनका रख कर क्या होगा? या तो मौका पाकर कोई चोर उचक्का ले जायगा, और अगर तुमने कहीं गाड़कर धर दीं तो धरे धरे खाई चढेगी।

बहू की बात सुन सास ने कहा—बेटा चीजें तुम्हारे भाग्य से आई हैं सो तुम पहनो और रुपया के लिए जैसा तुम्हारा मन हो करो।

सास की बात का उत्तर देते हुए बहू बोली—बाई तुम कहो सो ठीक है, पर गहना तो तब शोभता है, जब घर गाँठ में कुछ और हो। 'नाक नंगी गरें हमेल' अच्छी नहीं लगती। मेरा मन तो यही है कि इन सब चीजों और रुपयों से एक जोड़ी बैल लेकर खेती की जाय, जिसमें सब तन मन से लगकर काम करें। और फिर जब भगवान सुभीता दे, तब चार की जगह छः चीजें बनवा देना।

बहू की बात सास के गले तो उतरी, पर उसने अपनी ओर से कुछ न कह, जिसके पाँव उसी के गले में डालते हुए कहा—बेटा, मैं कुछ नहीं जानती। मेरा तो जो था सो भुगत चुकी। अब तुम जानो तुम्हारा काम जाने मुझे क्या आया खेत हूँ, 'आज मरी कल दूसरा दिन।'

सास की बात सुन बहू ने कहा—बाई अभी से ऐसी बातें न कहो, कुछ दिन तो सेवा करने दो।

इसके बाद उस दिन तो फिर कुछ बात न हुई, पर दो चार दिन पीछे पुरा पड़ोस की सलाह से वही हुआ जो बहू ने कहा था—एक-दो चीजें बहू के पहिनने को बचा और सब बेचकर एक जोड़ी बैल लिए गए। एक गाय ली गई। घसियारापन छोड़ किसानी शुरू हुई।

भगवान की दया से पहिली ही फसल अच्छी आई और कक्को के दिन फिरने लगे। कक्को के लिए अब राम भजन छोड़ और कुछ काम न था। पर इस सुख में वे अधिक दिन न चल सकीं। एक दिन चलते फिरते ही बहू बेटे के सिर पर हाथ फेर फलने-फूलने की आशीष दे चल बसीं।

बहू बेटे ने स्थिति के अनुसार माँ का क्रिया-कर्म कर, चार पंचों से हाथ जोड़कर कहा—सब ने मिल कर जैसी उनकी निभाई बनाई, मेरी भी भूल-चूक माफ कर मुझे भी निभाते चलें। गाँव पुरवालों ने धीरज बँधा हिम्मत से काम करने को कहा और अपने अपने घर गये।

माँ के चले जाने पर अब कोई तीसरा सिर पर न था। पति पत्नी ही अपने विवेक से काम चला रहे थे। एक दिन पत्नी ने पति से कहा—गृहस्थ धर्म के अनुसार बाहर से रीते हाथ आना शुभ नहीं होता है। इसलिए घर आते समय जब कोई चीज लाने लायक मिले लेते आना चाहिए। उसमें यह नहीं सोचना चाहिए कि यह वस्तु हमारे आज के

काम की नहीं है। गृहस्थी में हर गिरी पड़ी चीज कभी न कभी काम आती ही है, कवि ने कहा है

सकल वस्तु सग्रह करो कबहुँ आइहै काम।
समय पड़े पर नहिं मिलै मागे खरचे दाम॥

बात होने के दूसरे ही दिन से पति जब बाहर से आता कुछ न कुछ लेकर ही आता। कभी घर गृहस्थी के काम की। कभी खेती-बारी के काम की। जो आज के काम की न होती पत्नी आगे काम आने की आशा पर उसे सहेजकर रख देती।

जिस गाँव की यह बात है, उस गाँव के राजा भी उसी गाँव मे रहते थे। एक दिन उनकी रानी अपनी सहेलियों के साथ स्नान करने गयीं। नदी के घाट पर पहुँचते ही सबने अपना अपना सामान रक्खा, और नदी में उतर विनोद करने लगीं। रानी भी उन सबके साथ हँसने खेलने में व्यस्त हो गई। साथ के सिपाही प्यादे घाट के ऊपर पेड़ों की छाया में बैठ गए।

थोड़ी देर बाद सब स्नान कर बाहर आयीं, रानी ने कपड़े बदले और चीजें पहिनने लगीं। तब उन्होंने देखा कि उनके गहनों मे हार नहीं है। हार न मिलने से रानी के चेहरे का रग उतर गया। रानी ने दासियों से और दासियों ने प्यादों से कहा। हार की ढूँढ खोज प्रारम्भ हुई। सबने इधर उधर पत्थरों, पेड़ों, और नदी के कगारों की खोहें दरारें देखीं, पर हार का कहीं पता न चला। तभी किसी ने वहाँ से होकर चील के मड़राने उतरने की बात बताई। सोचा हो सकता है हार के चमकते नगों से चील को कुछ भ्रम हुआ हो और हार लेकर उड़ गयी हो। अस्तु आस-पास की झाड़ी झुरमुटें देखी गई पर हार तो गया सो गया कोई पता उसका न चला।

रानी अनमने मन घर आयीं और अभागी सी सूरत लेकर एक ओ[र] बैठ गयीं। खबर मिलते ही राजा ने आकर रानी को समझाया। दूस[रा] उससे भी बढ़िया हार बनवाने को कहा पर रानी के मन मे एक भी बा[त] न जम रही थी। उन्हें हार के गिरने से ज्यादा दुःख इस बात का था [कि] सोना न गिरा भला होता है न मिला। वे रह रहकर यही सोच र[ही] थीं कि भगवान ने यह हार खोने के बहाने न जाने किस अमंगल [की] सूचना दी है।

रानी को इस प्रकार बेचैन देख महाराज ने बस्ती में और आस-पास के खेरों-पुरवों में डुग्गी पिटवायी जो भी रानी का हार ढूँढ कर लायेगा या उसका पता देगा मुँहमाँगा इनाम उसे मिलेगा। गुप्तचर विभाग को भी हार ढँढने का काम दिया गया।

डुग्गी से तो कोई काम न बना पर गुप्तचर विभाग के कार्यकर्ताओं ने अवश्य आकर बताया कि अमुक-अमुक व्यक्ति के घर एक हार है। सूचना पाते ही महाराज ने दूसरे सिपाही उसके घर भेजे कि अगर हार उसके यहाँ है तो आकर दे जाय और इनाम ले जाय।

जिस समय राजा के सिपाही सन्देश लेकर उसके घर पहुँचे, घर का मालिक खेत पर गया था। उसकी पत्नी घर थी उसने कहा, हमारे घर की खपरैल पर कोई हार जैसी चमकती चीज पड़ी तो अवश्य है, पर हम नहीं जानते कि वह किसका क्या है। अगर रानी राजा का है तो पहिचान कर उठा ले जावें। हमारे घर से न कोई लेने गया था न कोई देने जायगा। इनाम इकराम हमें किसी से कुछ नहीं चाहिये।

स्त्री की दो टूक बात सुन सिपाही बड़े अचरज में पड़े। वे सोचने लगे कैसी अजीब औरत है। न तो राजा के हुक्म की ही परवाह करती है, और न मुँह माँगे इनाम का लोभ ही। सिपाहियों ने दरबार में लौट सारी बातें राजा को आ सुनाई। सुनकर एक क्षण के लिये राजत्व का दर्प उनके मन में जागा। वे सोचने लगे यदि साधारण आदमी भी इस प्रकार अवज्ञा करने लगें तो राज्य कैसे चले?

राजा यह सोच ही रहे थे कि किसी ने चुपके-चुपके उनके कान में कहा, "इसमें राज्याज्ञा की अवज्ञा कैसी? राज्य का काम तो यह है नहीं जो तुम डण्डे के बल पर करा लो। यह तो तुम्हारा व्यक्तिगत काम है जिसे प्रेम से ही कराया जा सकता है। और जब वह लेने नहीं आयी तो देने क्यों आयेगी? कर नहीं तो डर क्या? उसका यही अहसान क्या कम है जो "परधन माटी ढेल सम" मान उसने हार को छुआ छुपाया नहीं है। सिपाहियों के पूछने पर साफ कह दिया खपरैल पर पड़ा है। जिसका हो चीन्हकर ले जाय।

बात के मन में आते ही राजा के 'अहं' का रोष जहाँ का तहाँ विला गया। और वे सोचने लगे कि हार उसके यहाँ से आवे कैसे। स्वयं लेकर वह आ नहीं रही है। किसी सिपाही प्यादे को भी नहीं देती

है और एक हार के पीछे राजा-रानी जो कभी किसी प्रजाजन के घर आते जाते नहीं हैं, जायें कैसे। और रानी के हठ के आगे हार छोड़ते भी नहीं बनता है। बड़े चक्कर की बात है। कोई सहज साध्य उपाय जब राजा की समझ में न आया तब पाँचपंचों को बुला बात उनके सामने रक्खी गयी। पंचों ने बात को गुना, और कहा राजा प्रजा के बीच की दूरी की प्रथा पुरानी है आज के समय में उसका कोई महत्व अब नहीं है। समय गति के अनुसार हर बात व्योहार मे परिवर्तन आवश्यक है। समय बदलता है, हम बदलते हैं तब व्योहार की प्रथा क्यों न बदले। अच्छा हो राजा रानी भी प्रजा के घर आने जाने लगे।

पंचों का निर्णय होते ही रानी पीनस में और राजा घोड़े पर बैठ हार लेने चले। आगे आगे नकीब राजा की जय बोलता आ रहा था, और पीछे दरबारी मुसाहिबों के साथ राजा रानी की सवारी चल रही थी। बात की बात में गाँव के एक छोर से दूसरे छोर तक हल्ला हो गया, आज एक साधारण किसान के घर राजा रानी की सवारी जा रही है। बात एकदम नयी थी। हर चौराहे और चौपाल पर एक ही चर्चा थी।

गैल भर में स्त्री पुरुषों ने उल्लास के साथ राजा-रानी का स्वागत किया द्वार द्वार पर तिलक और नजर निछावर की गयी। जगह जगह फूल बरसाये गये। राजा-रानी ने भी सिर झुका, हाथ हिला, सबका मुजरा स्वीकार किया। इस प्रकार धूम धाम से चलती हुई राजा रानी की सवारी उस किसान के दरवाजे पहुँची। उसने भी आगे बढ़कर पाँवड़े डाल राजा-रानी का स्वागत किया। पण्डितों से तिलक करवा नारियल भेंट किया और नकीब को समुचित निछावर दी।

स्वागत सत्कार होने के बाद रानी ने उस किसान स्त्री से हार की बात की। स्त्री ने हाथ जोड़कर कहा—अन्नदाता मेरे पति जब कहीं बाहर से घर आते हैं तब रीते हाथ न आ कुछ न कुछ लेकर ही आते हैं। एक दिन या तो अपने सरल स्वभाव से, या विनोद में मुझे खिजाने के विचार से वे कुछ और न ला एक मरा साँप लेकर आये। मैंने उनसे तो कुछ न कहा पर मन में सोचा भगवान ने इस मरे साँप के आने में भी कुछ भला सोचा होगा। यही सोच मैंने साँप को घर की खपरैल पर फेंक दिया। दूसरे दिन जब कि मैं बखरी में ही थी एक चील घर

के ऊपर उतरी और हार को छोड़ साँप उठा कर चली गयी। मर, साँप उसके लिये हार से अधिक काम का था। जिस समय जो चीज काम में आ जाय उस समय वही कीमती होती है। चील के उड़ते ही मैंने खाट पर चढ़कर देखा तो मालूम हुआ किसी का जड़ाऊ हार है। मैंने उसे उठाया इसलिये नहीं कि परायी चीज को छूकर हाथ मैले क्यों करूँ? इसीलिये वह वहीं पड़ा रहा। चलकर देख लें आपका हो तो उठा ले जायँ।

अपनी बात पूरी कर किसान पत्नी राजा रानी को लेकर भीतर गयी। घर कच्ची मिट्टी का देहाती घरौंदा था। इतना छोटा कि उसके भीतर पहुँचते ही राजा-रानी तनिक दूर के लिये हार की बात छोड़कर यही सोचने लगे कि यह लोग इसमें रहते कैसे हैं? स्वयं भी रहते हैं, बैल ढोर भी बाँधते हैं, ईंधन कण्डा और भूसा चारा भी रखते हैं। बखरी के एक कोने में पत्थरों के चबूतरे पर पानी की घिनौंची है, जिसके ऊपर हल्की सी छपरी पड़ी है लौकी और तुरइयों की बेलें जिस पर चढ़ रही हैं। दूसरे कोने में तुलसीघरा है, जिसमें तुलसी लगी है और गेंदा के फूल भी खिल रहे हैं। घिनौंची के पास एक ओर चौंतरिया है जिस पर धुले मँजे बर्तन रक्खे हैं। बखरी और घर कच्चे छोटे होकर भी लिपे पुते और साफ हैं। आकर्षक हैं। इस प्रकार उनके इस छोटे से घर को देखकर राजा ने आँखों ही आँखों में रानी से कहा देखो यह थोड़े में ही किस प्रकार शांति और व्यवस्था के साथ रहते हैं जब कि हमारा उस उतने बड़े किले में भी पूरा नहीं पड़ता।

राजा रानी यह सोच रहे थे कि जिस घर की खपरैल पर हार पड़ा था उसकी उरयतिया के नीचे घर के मालिक किसान ने एक खाट बिछा दी और राजा की ओर संकेत किया कि इसी घर के ऊपर हार पड़ा है उठवा लें। राजा के संकेत पर एक सिपाही ने खाट पर चढ़ हार उठाया और राजा के हाथ में दे दिया।

हार सामने आते ही रानी के चेहरे का रंग खिल गया। शरीर के रोम-रोम में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। उसी प्रसन्नता की लहर में रानी ने उस स्त्री से पूछा, क्यों जी! इस हार को घर में पाकर क्या तुम्हारे मन में इसे पहिनने की लालसा नहीं हुई?

स्त्री ने सहज भाव से कहा, नहीं सरकार, हमारे लिए तो तन तोड़ परिश्रम करने पर शरीर पर पसीने की जो धारें बहती हैं वही सच्चा गहना है। कंचन का गहना तो उसी कंचन काया पर दिपता—शोभता है जिनकी देहों पर पसीने की धारें नहीं बहतीं।

स्त्री के उत्तर से रानी निरुत्तर हो गयीं। राजा ने उस स्त्री से इनाम माँगने को कहा।

इनाम की बात आते ही स्त्री पुरुष ने हाथ जोड़कर कहा, अन्नदाता इसमें इनाम की कौन सी बात है। हम तो इस बात के अपराधी हैं कि हार को इ ने समय तक अपने घर रोके रहे। जैसे ही चील छोड़ गयी थी उठाकर थाने—कचहरी या दरबार में जमा कर देना था। पर महाराज ऐसा करने में पुलिस के सवाल-जवाब का डर था। कौन उसकी उलमन में पड़ता। थानेवालों से तो 'कर तो डर न कर तो डर' के सिद्धान्त से ही काम चलता है। इसलिए हमने उसे कहीं जमा नहीं किया। और आपके प्यादों को इसने नहीं दिया या उनके साथ लेकर नहीं गये कि राजा रानी के चरणों की धूल से अपने घर को पवित्र करना था, उनके दर्शन करने थे। मेरे लिए इससे बड़ा इनाम और क्या होगा कि आज मेरी बात से बस्तीवालों को राजा रानी के दर्शनों का संयोग मिला। सरकार ने भी अपनी प्रजा और पुरी को देखा।

किसान दम्पत्ति की बात पूरी होते ही राजा ने कहा, तुम्हारा कहना तो ठीक है लेकिन तुम्हें फिर भी इनाम तो माँगना ही चाहिये।

राजा की बात पूरी होते ही उन्हें उत्तर मिला,—अगर सरकार की ऐसी ही आज्ञा है तो हमारी इच्छा है कि इस वर्ष बस्तीभर के सभी राजा रंक अपने अपने घर दीवाली न पूजे सब मिलकर मेरे ही घर आकर लक्ष्मी पूजन करें। मुझे छोड़ और किसी के घर दीवाली न जले।

राजा ने बात सुनी, और दीवान को आज्ञा दी—बस्ती में डुग्गी पिटवा दी जाय कि इस वर्ष कोई भी अपने घर दीवाली न जलाये। महलों में भी नहीं जलेगी। मेरे साथ सब मिलकर इन्हीं के घर लक्ष्मी और दीवाली की पूजा करेंगे।

राजा की आज्ञा होते ही किसान दम्पति ने राजा रानी के चरण छूकर हाथ जोड़े और राजा की सवारी महलों को लौट चली।

यथा समय दीवाली आयी। सभी ने अपने अपने घर आँगन लीप पोत कर आकर्षक बनाये पर पूजा किसी के घर न हुई। किसी के भी घर या घूरे पर आज दियों की ज्योति न जगमगा रही थी। पूरे गाँव ने आज एक घर को अपना घर मानकर वहीं अपनी श्रद्धा के दूर्वादल अर्पित किये थे एक की पूजा में सबकी पूजा और सबकी अर्चना में एक की कल्पना निहित हो रही थी। राजा रानी के साथ बस्ती भर के स्त्री पुरुष अपनी अपनी थालियाँ सजा पूजा के लिए उसके घर आये। सभी ने शुद्ध मन से उत्साह के साथ गा बजाकर सुराती जगायी और लक्ष्मीजी का पूजन किया। होम धूप दे आरती उतारी। भोग लगाया। और प्रसन्न मन से प्रसाद ले अपने अपने घर गये। सबके जाते ही पति ने घर घूरे पर यथास्थान दिये जलाये और पत्नी ने आँचल के छोर से चौक लीट लक्ष्मीजी के पट के आगे माथा टेक विनती की। फिर दोनों ने बैलों ढोरों को रोटी खिलायी और गोड़्या कूले। तब सब काम से निपट ब्याळू कर चौका बासन किया, और पति पौर में और पत्नी पूजा के घर म जा लेटी। लेटने जाने से पहिले पत्नी ने पति से कहा, देखो आज दीवाली की रात है, यदि कोई किवाड़ खुलवाये तो मुझे बताये बिना न खोलना।

थोड़ी देर पीछे रात लौटने पर बाहर से किसी ने किवाड़ भड़भड़ाये पौर मे लेटे पुरुष ने पूछा, कौन ?

पुरुष के इतना कहते ही बाहर से उत्तर मिला, मैं हूँ लक्ष्मी। उठ किवाड़ खोल।

लक्ष्मी से ठहरो कह, पुरुष ने भीतर जा पत्नी को सारी बात बतायी। पत्नी ने कहा, जाओ भीतर से ही कह दो हमें आपकी आवश्यकता नहीं है अन्य घर देखें।

पुरुष ने पौर मे जा गिने चुने शब्दों में पत्नी की बताई बात लक्ष्मी को बता दी। लक्ष्मी ने बात सुनी और उसका द्वार छोड़ आगे बढ़ीं। पूरे गाँव की एक एक गली और एक एक घर उन्होंने देखा पर कहीं दिये की टिमटिमाती ज्योति उन्हें न दिखी। और उनका वाहन बगैर कहीं रुके ठिठके पूरे गाँव की परिक्रमा दे जहाँ का तहाँ आ रुक गया। लक्ष्मी ने उतरकर फिर वही कुन्डी खटखटाई।

पौर में लेटे पुरुष ने फिर पूछा कौन है ?

लक्ष्मी ने बाहर से कहा, मैं हूँ लक्ष्मी, तेरे घर रहने आयी हूँ, उठ किवाड़ खोल।

पुरुष ने लक्ष्मी से फिर ठहरो कहा, और भीतर जा पत्नी से बात की। पत्नी ने फिर वही उत्तर दिया, और पुरुष ने आकर जैसा का तैसा कह दिया। इस प्रकार फिरसे एकदम रूखा उत्तर पाकर लक्ष्मीजी फिर गली कूलियोंकी धूल कीचड़ देखती आगे बढ़ीं। पर न तो उन्हें कहीं होम धूप की गन्ध ही मिली और न कहीं दिये की ज्योति ही दिखी। पूरे गाँव में एक दम सन्नाटा था। एक सँऊर (छोटी मक्खी) भी कहीं न भन्ना रही थी। लक्ष्मी को फिर चक्कर काट जहाँ का तहाँ आना पड़ा, वहाँ की जगमगाती ज्योति से चकचौंधिया कर उनका वाहन फिर खड़ा हो गया। लक्ष्मी फिर उतरीं और दरेन में चढ़कर फिर किवाड़ भड़काये।

किवाड़ भड़कते ही पुरुष लक्ष्मी से बात किये बिना ही भीतर गया और पत्नी से कहा वे फिर आ गयीं। अबकी बार पत्नी स्वयं उठकर पौर में आयी और कहा, कहिये माता क्या आज्ञा है ?

लक्ष्मी ने कहा, आज्ञा कुछ नहीं है। सर्वसिद्धिदायिनी लक्ष्मी हूँ। एक रात में तीसरी बार लौट लौटकर तेरे घर रहने आयी हूँ। किवाड़ खोल भीतर आऊँ।

स्त्री ने भीतर से ही हाथ जोड़कर कहा, मइया यह तो आपकी कृपा है कि मुझ ऐसे अकिंचन के घर रहने का विचार आपने किया। पर क्षमा करें, कि मैं आपको अपने घर रखने में असमर्थ हूँ। बस्ती में एक से एक भले घर हैं। किसी के भी घर जा रहें। हम पर दया करें। हम जैसे हैं वैसे ही रहने दें।

लक्ष्मी को स्त्री के रूखे उत्तर से गुस्सा तो आया, पर करतीं क्या। उनके सामने भी परेशानी थी। इधर तो पूरे गाँव में प्रकाश की भीनी किरण भी कहीं नहीं दिख रही थी जहाँ वे जातीं। और उधर सवेरा होने जा रहा था। इसलिये उन्होंने समय देख अपने रोष को मन में ही मारा और कहा। देख बहू अपने घर आये शत्रु का भी ऐसा अपमान नहीं किया जाता है, जैसा तू मेरा कर रही है। मेरे पाने के लिये मनुष्य ही नहीं समस्त देव-दानव, यक्ष गन्धर्व और किन्नर सभी लालायित रहते हैं। जहाँ भी मैं जाती या रहती हूँ वहाँ सत्य, धर्म, शील, विनय और वैभव कीर्ति और कर्म सहज भाव से रहते हैं। मुझको पाकर फिर और कुछ

पाना शेष नहीं रहता। यही कारण है कि ससार में मेरी प्राप्ति के लिए होन-अनहोने सभी प्रकार के कार्य किए कराये जाते हैं। और तू है कि घर आयी लक्ष्मी का अनादर कर रही है। तीसरी बार तेरे घर आयी हूँ और एक बार फिर कहती हूँ, किवाड़ खोल कर मुझे भीतर ले।

लक्ष्मी की बात पूरी होते ही स्त्री ने कहा माता यह तो मैं सुनती हूँ कि आपके प्रभाव से सभी कुछ सहज साध्य होता है। जनम जनम के कलह-कलुष भी आपके अनुग्रह से दूर हो दूषण भी भूषण बन जाते हैं। पर इसी के साथ यह भी सुनती हूँ कि आपको पाकर मति बौरा जाती है। अह की ज्वाला जागृत हो विवेक भ्रष्ट कर देता है। आपके ही कारण भाई भाई में विग्रह होता है। पुरुषार्थ और सादगी की जगह आलस्य, विलासिता और बनावट आ जाती है। आपकी गति भी चंचल है, आज मेरे यहाँ आने का विचार कर रही हैं, पता नहीं कल बिना कहे ही कहाँ को चल दें। इसलिए हम आपको अपने घर में बिठा व्यर्थ की उलझन में नहीं पड़ना चाहते हैं, अपने श्रम और सन्तोष के सहारे जैसे भी बनता है अपनी गृहस्थी चला रहे हैं। कल आपके आने से सब प्रकार के साधन सुलभ हुये कि वैभव और विलासिता के फेर में पड़ व्यसनों के दास बन जायेंगे। आलसी बन कर औरों के हाथ जीने लगेंगे। और फिर जब अपने स्वभाव के कारण आप हमें पशु बनाकर चली जाँयगी तब हम दर दर और घर घर की ठोकरे खाते फिरेंगे। इसी से इच्छा होने पर भी हम आपका स्वागत करने में असमर्थ हैं। हमें क्षमा करें और कोई और घर देख लें।

स्त्री की बात पूरी होते ही लक्ष्मी जी ने कहा, यह तू जो कह रही है सब ठीक है। और तेरा यह कहना तेरा अकेला ही नहीं है और भी अनगिनते स्वर इसमें ध्वनित हैं। पर यह ध्वनि किन की और कैसी है यह तू नहीं, मैं जानती हूँ। तेरे स्वर में उन लोगों का स्वर प्रति-ध्वनित है, जो मेरे लिए लालायित रहते हैं पर मैं उनके घर नहीं जाना चाहती। और यदि कभी तेरी ही तरह उनके शील, सयम, औदार्य, पुरुषार्थ और कर्मक्षमता आदि के कारण उनके घर गयी और उन्होंने कुछ ही समय में अपने विवेक का सतुलन खोया कि मैं उनके यहाँ से चली जाती हूँ। फिर ऐसे लोग यह भूल कर कि मैं केवल सत्य धर्म से बँधी हूँ। मुझे न पाकर या मेरे चले आने पर मुझे लाछित करने की

तरह तरह की मन गढ़न्त कहानियाँ गढ़ते हैं। वैसे संसार जानता है कि मैंने समुद्र से प्रकट होते ही अनगिनते देव दानवों के बीच केवल इसीलिये विष्णु भगवान् का आश्रय लिया था कि उनमें पुरुषार्थ के साथ साथ विवेक बुद्धि भी है। क्षमा और दया भी है, बल और विक्रम भी है, दुष्टों दुष्कृतियों के दमन की शक्ति भी है और उदारता तथा स्नेह पूर्ण समत्व के साथ विश्व के पालन पोषण की वृत्ति और सामर्थ्य भी उनमें है। किसी के भी प्रति उनके मन में द्वेष या पक्षपात नहीं है। उनके इन्हीं गुणों के कारण मैं मूर्त रूप से अक्षय और अनन्त होकर उनके निकट रहती हूँ। हाँ उनके लीला विलास के लिये अवश्य अंश रूप में जहाँ तहाँ आती जाती रहती हूँ। पर जहाँ भी जाती हूँ, इन्हीं गुणों के आकर्षण से जाती हूँ। आज तेरी गति मति में इन गुणों की झलक मुझे मिल रही है। इसी से लौट-लौटकर तेरे घर आ रही हूँ। और फिर एक बार तुझसे कहती हूँ कि बिना बुलाये आने पर भी मुझे अपमानित न कर। किवाड़ खोल और भीतर आने दे।

लक्ष्मी की बात सुनकर स्त्री ने कहा, माता, मैं आपके चरणों में नत हूँ। मुझे अपने घर में आपका स्वागत और प्रतिष्ठा करने में प्रसन्नता तो होती है पर मन ही मन थोड़ा भय भी लगता है। इसीलिये प्रार्थना है कि आने के पूर्व तीन वचन देने की कृपा करें, प्रथम यह कि जैसा कि मैं सुनती हूँ कि लक्ष्मी और सरस्वती में पारस्परिक विरोध है, जहाँ एक होती है वहाँ दूसरी नहीं रहती। इसलिये वचन दें कि आपके साथ मेरे घर में विवेक और बुद्धि के रूप में सरस्वती भी रहेंगी। दूसरे यह कि आपके होते या आपके कारण मेरे घर में वंश विग्रह न होगा। तीसरी यह कि आप इस घर में अनन्त काल के लिये अक्षय होकर निवास करेंगी।

स्त्री की बात का उत्तर देते हुये लक्ष्मी ने कहा, बहू, मैं तेरी तीनों बातें स्वीकार तो करती हूँ, पर उनके साथ मेरी भी तीन शर्तें होंगी पहली यह कि जबतक तेरे घर में कोई शराब न पियेगा तबतक तेरे घर-कुल में बुद्धि विवेक और विचार शक्ति का अभाव न होगा। और जब तक तेरे घर में कोई जुआ न खेलेगा तबतक गृह कलह या वंश विग्रह की बात भी न आयेगी। और जब तक तेरे वंशधर वेश्या गमन से दूर रहेंगे तबतक उनके मन में पुरुषार्थ कर्म क्षमता और उदारता का बल रहेगा। वे आलसी और आचरण भ्रष्ट भी न होंगे। और जब तक ऐसा होगा

तब तक मैं अपनी सभी शक्तियों और सिद्धियों के साथ तेरे घर में निवास करूँगी। किन्तु जैसे ही तेरे घर में मेरे वचनों का भंग होगा वैसे ही मैं भी अन्यत्र जाने को स्वतन्त्र हूँगी। जब तक तू या तेरे वंशज मेरी निभायेंगे तब तक मैं भी तेरी और उनकी मानने निभाने का वचन देती हूँ।



लक्ष्मी के इतना कहने पर जैसे ही उस स्त्री ने किवाड खोल श्रद्धा के साथ आँचल पसार लक्ष्मी का स्वागत किया वैसे ही सूर्य की स्वर्णिम किरणें बिखरीं और भीतर बँधी गायें और नन्हें-नन्हें बछड़े रँभा उठे मानों सब अपने अपने स्वरों में लक्ष्मी की वन्दना कर रहे हों—

जयन्ति जगतां मातुः स्तनकुङ्कुमबिन्दवः।
मुकुन्दाश्लेषसङ्क्रान्तकौस्तुभश्रीविडम्बिनः॥

लक्ष्मी और

मदिरा-वेश्या व-जुए का त्रिदोष

लक्ष्मीजी को प्रसन्न-मुद्रा में देख गृह स्वामिनी ने विनीत भाव से कहा—महामाये आपने जो यह कहा कि जहाँ भी मदिरा, वेश्या और जुआ होते हैं वहाँ मैं नहीं रहती हूँ। किन्तु मैं देखती हूँ कि संसार में कितने ही स्थान ऐसे भी हैं, जहाँ यह सब भी हैं और आप भी हैं। अक्षय धन सम्पत्ति भी वहाँ है, सभी तरह के वैभव विलास और सुख सुविधाएँ भी वहाँ हैं। कोई भी अभाव अटकाव वहाँ नहीं है। आपका अत्यन्त अनुग्रह होगा यदि मेरे मन की शंका का निवारण करें कि आपकी कृपा के बिना वहाँ यह सब कैसे सम्भव है।

किसान-पत्नी की बात सुन लक्ष्मीजी ने कहा—बहू, तेरी बात ठीक है। तेरी ही तरह और भी बहुत से लोगों के मन में इस तरह की शंकाएँ होती रहती हैं। पर यह सब उनका भ्रम है। मैं एक बार नहीं अनेकों बार कह चुकी हूँ कि जहाँ भी मदिरा, वेश्या और जुआ इन तीनों में से एक भी होता है, वहाँ न मैं होती हूँ, न मेरी कोई शक्ति होती है। लोक व्यवस्था कार ने खुले गले से कहा है,—'रण्डी बाज, जुआरी, इनसे गंगा हारी' —फिर भला जहाँ आशुतोष शिव के जटा जूटों में रमने रहने वाली गंगा मैया हार मान जाँय, वहाँ मेरी बिसात ही क्या ? और जो तू यह कहती है कि कितने ही मद्यपी, जुआरी और वेश्यागामी जनों के यहाँ चैन की बंशी बजा करती है, यह उनके और दूसरों के मन का भ्रम है। उनके यहाँ जो चैन है वह संतोषहीन चैन है। जब तक प्राणी के मन में संतोष नहीं होता उसे सुखी नहीं कहा जा सकता। विचारक कवि की कामना है—

> हे संतोष सुसम्पदा हम करो धनवान।
> यदपि जग में बहुत धन नहि कोउ तोहि समान॥

जब तक व्यक्ति के तन मन में शांति नहीं होती, तब तक कुबेर की सम्पत्ति पाकर भी वह सुखी नहीं होता। योगेश्वर श्रीकृष्ण का मत है—

> नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
> न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

साधन रहित पुरुष के अन्तःकरण में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं होती है, और उस श्रेष्ठ बुद्धिहीन अयुक्त व्यक्ति के मन में आस्तिक भाव भी नहीं होता है। और आस्तिक भावना के बिना शान्ति और शान्ति के बिना सुख नहीं होता है।

शराबियों, जुआरियों और वेश्यागामियों के सुख-शान्ति सच्चे सुख शान्ति न होकर उसकी छलना मात्र होते हैं। एक पल के लिए भी उन्हें चैन नहीं होता। शान्ति नहीं होती। पवित्रता नहीं होती। जब कि पवित्रता के सम्बन्ध में मनु महाराज ने तन और मन दोनों की ही पवित्रता से धन की पवित्रता को अधिक श्रेष्ठ मानकर दृढ़ता के साथ कहा है—योऽर्थे शुचि सशुचि न मृद्वारि शुचि शुचिः—अर्थात् जो अर्थ यानी धन के सम्बन्ध में पवित्र है, वही पवित्र है। लोक चिन्तक ने धर्म और धर्म में सभी जगह श्रम और श्रम से उपार्जित धन की महत्ता को ही माना है। इसलिए श्रम से पसीना बहाकर कमाया गया थोड़ा सा भी धन जहाँ होता है वहाँ सुख और शान्ति होती है, तन मन और धन की पवित्रता होती है, सत्य और धर्म होते हैं। और जहाँ सत्य तथा धर्म होते हैं वहाँ मैं होती हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों में अटूट धन होने पर भी मैं नहीं होती हूँ। जो व्यक्ति केवल सोने चाँदी में ही मुझे देखते हैं, वे मेरा उपहास करते हैं।

और जो तू ने यह कहा, कि यदि इन तीन में से एक भी कहीं हो तब क्या स्थिति होती है। उस सम्बन्ध में मैं तुझे अपनी ओर से कुछ न कह एक प्राचीन कहानी सुनाती हूँ, जिससे तू सहज ही जान जायगी कि इन तीन में से एक भी जहाँ होता है वहाँ और दूसरे भी कैसे एक के बाद एक, बिना बुलाए पहुँचकर अपने कृपा पात्र का बटाढार कर देते हैं।

बात पुराने जमाने की है। एक बहुत ही प्रसिद्ध नगर कहीं था। देश देशान्तर में उसकी ख्याति थी। दूर दूर के लोग उसका सौन्दर्य देखने आते थे। एक दिन एक पण्डितजी भी उसकी प्रसिद्धि सुनकर उसे देखने वहाँ पहुँचे। बड़े ही ज्ञानी ध्यानी और विचारवान पुरुष वह थे। नगर की प्रसिद्धि सुनकर वे भी कौतूहल वश उसे देखने चले आए।

नगर के प्रवेश द्वार पर पहुँचते ही उन्होंने देखा कि प्रवेश द्वार पर सशस्त्र पहरुआ बैठा है। पहरुए ने भी देखा कि एक तिलकधारी पण्डित

जी अपने सहज भाव से पाँव बढ़ाए भीतर चले जा रहे हैं। पहरुए ने पण्डितजी को देखा और रोक कर कहा—

महाराज, नगर के भीतर प्रवेश करने के नियम को पूरा करके ही भीतर जाइएगा।

पण्डितजी ने रुक कर पहरुए से पूछा—कौन सा नियम है भैया, नगर में प्रवेश पाने का ?

पहरुए ने द्वार पर लगे सूचनापट की ओर संकेत किया—पण्डितजी ने सूचना पट देखा, उस पर लिखा था—नगर में प्रवेश करने के पूर्व वेश्या के कोठे पर जाना होगा।

वेश्या के कोठे पर जाने का नियम जानते ही शास्त्रीजी के रोम रोम खड़े हो गये। 'शिव शिव' करते बोले, कैसा पातकी नगर है यह जिसका प्रवेश ही यहाँ आनेवालों को नरक की गैल में धकेलता है। मेरा शव वेश्या के कोठे पर जाय तो जाय, पर जीवित तो वहाँ जाने से रहा। पण्डितजी ने इतना कहा और भीतर न जा उल्टे पैरों पीछे लौट चले। सोचते चले, अगर कोई और द्वार होगा तो वहाँ से जाकर नगर की शोभा देख लूँगा, अन्यथा बिना देखे ही लौट जाऊँगा। विचारों की इसी उधेड़ बुन में उलझे पण्डितजी महाराज कुछ ही आगे बढ़े कि उन्हें पता चला कि इस द्वार से थोड़ी ही दूरी पर एक और भी द्वार नगर में प्रवेश पाने का है। पता लगते ही शास्त्रीजी महाराज उस ओर बढ़ चले। थोड़ा चलने पर वह द्वार भी उन्हें मिल गया। इधर उधर देखते हुए वे उसके भीतर जाने लगे। दो चार डग ही चले होंगे कि पहरुए ने उन्हें रोकते हुए कहा—महाराज, नगर में जाने के पूर्व मदिरा पान करना होगा।

मदिरा पान की बात सुनते ही पण्डितजी को जोर की फुरहरी सी आई, उन्हें लगा जैसे जाड़ा देकर बुखार आ रहा हो। वहीं माथा टेककर बैठ गए। और जब कुछ समाहत हुए तब खिन्न मन से पीछे लौट पड़े। थोड़ा चलने पर कुछ पथिक उन्हें मिले, इसी नगर को देखकर वे सब लौट रहे थे। पण्डितजी से उनकी बात हुई, बड़ी प्रशंसा उन्होंने उस नगर की की। प्रशंसा के सुनते ही पण्डितजी महाराज का लौटा हुआ मन फिर इस नगर के देखने को लालायित हुआ। उन्होंने फिर पता लगाया, क्या कोई और द्वार भी नगर में प्रवेश पाने का है ? अपनी इस खोज में उन्हें पता लगा कि अभी दो द्वार और भी नगर में प्रवेश पाने के हैं। उनके

नियम इन पिछले द्वारों से कुछ हलके हैं। अपनी शोध में सिद्धि पाते ही पण्डितजी तीसरे द्वार की ओर बढ़े।

थोड़ा ही चलने पर तीसरा द्वार उन्हें मिला, और जैसे ही चौंक्ते चौंक्ते उन्होंने उसके भीतर पाँव बढ़ाया कि वहाँ के पहरेदार ने ललकार कर कहा—महाराज मास खाये बिना भीतर जाने का प्रयत्न न कीजिए।

शुद्ध सागाहारी वैष्णव के कानों में मास भक्षण की बात पहुँचते ही उसका जी मिचलाना स्वाभाविक बात थी। उन्हें लगा जैसे वमन होने वाला हो। जिससे बेचैन हो वे चौथे द्वार की ओर बढे।

चौथे द्वार पर पहुँचने पर पता चला कि इस द्वार पर जुआ खेलने का नियम है। जुए का नाम सुनते ही विद्वान पण्डितजी को भगवान का यह आदेश स्मरण हो आया जिसमें उन्होंने कहा है—

अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व। वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः॥

अर्थात्–हे मनुष्य, पाँसों से न खेल। खेती आदि उत्पादन के अन्य पवित्र कार्यों म लग। और उससे जो भी प्राप्त हो उसी में अपने श्रम की सफलता मान उत्तरोत्तर उन्नति की ओर बढ़ता चला। भगवान के इस आदेश के साथ ही ब्राह्मण देवता को जुए का परिणाम बतानेवाले राजा नल और धर्मराज युधिष्ठिर के सर्वनाशी आख्यान भी सहसा स्मरण हो आए। जिनकी सुधि आते ही वे उस प्रसिद्धि प्राप्त नगर को देखने का लोभ छोड़ उसे बिना देखे ही घर को लौट चले।

लौटकर थोडी ही दूर चले होंगे कि किसी ने चुपके चुपके कान में कहा—कैसे आदमी हो, कितनी दूर से कितनी उत्कण्ठा के साथ यह ऐतिहासिक और सौन्दर्य पूर्ण नगर देखने आए थे, और अब यहाँ तक आकर उसे बिना देखे ही लौट रहे हो। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा? घर पहुँचने पर तुम घर पड़ोस तथा गाँव के लोगों से अपने परिहास से बचने के लिए इस ऐतिहासिक नगर की बुराई ही तो करोगे न? जिसे सुनकर और दूसरे लोग जो इसे देखने आना चाहते होंगे वे भी इसे देखने से रह जायँगे। अपने धार्मिक दृष्टिकोण से वेश्या वाला द्वार तुमने छोड़ा, मास और मदिरा वाले द्वार भी छोड़े ठीक है। एक परम वैष्णव को भक्ष्याभक्ष्य का विचार तो करना ही चाहिये "आचार परमोधर्म" पर यहाँ तो कुछ खाना पीना नहीं है। दूर से चार पासे

फेंको और मौज से नगर की सम्पन्नता और उसका वैभव विलास देखो। ताकि घर जाकर दूसरों से भी तो उसके बारे में कुछ कह सको।

बात के मन में आते ही पण्डितजी ने फिर कुछ सोचा और सोचकर धीरे धीरे पाँव बढाते चौथे जुए वाले द्वार पर पहुँच पहरेदार से नगर में प्रवेश पाने के नियम पालन की अपनी सहमति प्रकट की।

पण्डितजी की स्वीकृति पाते ही पहरेदार उन्हें आदर पूर्वक जुए के अड्डे पर ले गया। वहाँ के खिलाडियों और दूसरे लोगों ने उल्लास के साथ उनका स्वागत किया, और जब वे समुचित स्थान पर बैठ चुके तब उत्साह के साथ उनके सामने पासे रख दिए। पण्डितजी ने झिझक भरे हाथों पासे उठाये और जय राजा नल के पासे कहकर एक क्षण हाथ में फिरा सीधे फेंक दिए। संयोग की बात कि पहल ही हाथ में विजय पाई। और फिर विजय के उसी उल्लास में लगे हाथ किसी प्रोत्साहन की प्रतीक्षा के बिना ही दूसरा हाथ जो फेंका तो उसमें भी विशिष्टता के साथ पारागत हुए। इसके पश्चात् तो—"जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई" के अनुसार पण्डितजी का ऐसा मन लगा कि एक के बाद एक हाथ पर हाथ फेंकते चले गए। कभी जीतते कभी हारते। इस प्रकार जब खेलते खेलते काफी समय हो गया और भूख के मारे पण्डित जी की आतें कुलबुलाने लगीं, तब उन्होंने साथ के खिलाडियों से पूछा— क्या यहाँ कुछ भोजन-पान के लिए भी मिलेगा?

साथियों ने आत्मीयता के स्वर में कहा—हाँ महाराज, खिलाड़ियों की सभी सुविधाओं का प्रबन्ध यहाँ रहता है। कोफ्ता, कबाब, शराब जो भी आप आज्ञा दें मँगवा दिया जाय।

माँस मदिरा का नाम सुनते ही पण्डितजी ने 'शिव शिव' कह पासे फेंके। जीत का पासा पड़ते ही साथियों ने' वाह्-वाह्' कहकर तालियाँ बजाई और पण्डितजी भूख प्यास सब कुछ भूल दाव फेंकने देखने में उलझ गए। पर भूखे भजन कब तक होता, थोड़ी ही देर में फिर उनकी आतें कुन मुनाई और उन्होंने आशा भरी दृष्टि से साथियों की ओर देखा। साथी तो रोज के भुक्त-भोगी थे, उन्होंने पण्डितजी की परेशानी का आसानी से अनुभव किया और कहा—महाराज परेशान न हूजिए, ऐसे ही अवसरों के लिए तो आप सब ज्ञानी-गुनी जन 'आपत्ति काले मर्यादानास्ति' का सिद्धान्त बताते हैं। हाजिर के मेला में

नियम इन पिछले द्वारों से कुछ हलके हैं। अपनी शोध में सिद्धि पाते ही पण्डितजी तीसरे द्वार की ओर बढे।

थोडा ही चलने पर तीसरा द्वार उन्हें मिला, और जैसे ही चौंकते-चौंकते उन्होंने उसके भीतर पाँव बढाया कि वहाँ के पहरेदार ने ललकार कर कहा—महाराज मास खाये बिना भीतर आने का प्रयत्न न कीजिए।

शुद्ध साकाहारी वैष्णव के कानों में मास भक्षण की बात पहुँचते ही उसका जी मिचलाना स्वाभाविक बात थी। उन्हें लगा जैसे वमन होने वाला हो। जिससे बेचैन हो वे चौथे द्वार की ओर बढे।

चौथे द्वार पर पहुँचने पर पता चला कि इस द्वार पर जुआ खेलने का नियम है। जुए का नाम सुनते ही विद्वान पण्डितजी को भगवान का वह आदेश स्मरण हो आया जिसमें उन्होंने कहा है—

अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व। वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः॥

अर्थात्-हे मनुष्य, पाँसों से न खेल। खेती आदि उत्पादन के अन्य पवित्र कार्यों में लग। और उससे जो भी प्राप्त हो उसी में अपने श्रम की सफलता मान उत्तरोत्तर उन्नति की ओर बढ़ता चला। भगवान के इस आदेश के साथ ही ब्राह्मण देवता को जुए का परिणाम बतानेवाले राजा नल और धर्मराज युधिष्ठिर के सर्वनाशी आख्यान भी सहसा स्मरण हो आए। जिनकी सुधि आते ही वे उस प्रसिद्धि प्राप्त नगर को देखने का लोभ छोड़ उसे बिना देखे ही घर को लौट चले।

लौटकर थोडी ही दूर चले होंगे कि किसी ने चुपके चुपके कान में कहा—कैसे आदमी हो, कितनी दूर से कितनी उत्कण्ठा के साथ यह ऐतिहासिक और सौन्दर्य पूर्ण नगर देखने आए थे, और अब यहाँ तक आकर उसे बिना देखे ही लौट रहे हो। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा? घर पहुँचने पर तुम घर पड़ोस तथा गाँव के लोगों से अपने परिहास से बचने के लिए इस ऐतिहासिक नगर की बुराई ही तो करोगे न? जिसे सनकर और दूसरे लोग जो इसे देखने आना चाहते होंगे वे भी इसे देखने से रह जायँगे। अपने धार्मिक दृष्टिकोण से वेश्या वाला द्वार तुमने छोडा, मास और मदिरा वाले द्वार भी छोडे ठीक है। एक परम वैष्णव को भक्ष्याभक्ष्य का विचार तो करना ही चाहिये "आचार परमोधर्म" पर यहाँ तो कुछ खाना पीना नहीं है। दूर से चार पासे

फेको और मौज से नगर की सम्पन्नता और उसका वैभव विलास देखो। ताकि घर जाकर दूसरों से भी तो उसके बारे में कुछ कह सको।

बात के मन में आते ही पण्डितजी ने फिर कुछ सोचा और सोचकर धीरे धीरे पाँव बढाते चौथे जुए वाले द्वार पर पहुँच पहरेदार से नगर में प्रवेश पाने के नियम पालन की अपनी सहमति प्रगट की।

पण्डितजी की स्वीकृति पाते ही पहरेदार उन्हें आदर पूर्वक जुए के अड्डे पर ले गया। वहाँ के खिलाड़ियों और दूसरे लोगों ने उल्लास के साथ उनका स्वागत किया, और जब वे समुचित स्थान पर बैठ चुके तब उत्साह के साथ उनके सामने पासे रख दिए। पण्डितजी ने झिझक भरे हाथों पासे उठाये और जय राजा नल के पासे कहकर एक दाएं हाथ में फिरा सीधे फैंक दिए। सयोग की बात कि पहले ही हाथ में विजय पाई। और फिर विजय के उसी उल्लास में लगे हाथ किसी प्रोत्साहन की प्रतीक्षा के बिना ही दूसरा हाथ जो फैंका तो उसमें भी विशिष्टता के साथ पारागत हुए। इसके पश्चात् तो—"जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई" के अनुसार पण्डितजी का ऐसा मन लगा कि एक के बाद एक हाथ पर हाथ फैंकते चले गए। कभी जीतते कभी हारते। इस प्रकार जब खेलते खेलते काफी समय हो गया और भूख के मारे पण्डित जी की आँतें कुलबुलाने लगीं, तब उन्होंने साथ के खिलाड़ियों से पूछा—क्या यहाँ कुछ भोजन-पान के लिए भी मिलेगा ?

साथियों ने आत्मीयता के स्वर में कहा—हाँ महाराज, खिलाड़ियों की सभी सुविधाओं का प्रबन्ध यहाँ रहता है। कोफ्ता, कबाब, शराब जो भी आप आज्ञा दें मँगवा दिया जाय।

मांस मदिरा का नाम सुनते ही पण्डितजी ने 'शिव शिव' कह पासे फैंके। जीत का पासा पड़ते ही साथियों ने 'वाह-वाह' कहकर तालियाँ बजाई और पण्डितजी भूख प्यास सब कुछ भूल दाव फैंकने देखने में उलझ गए। पर भूखे भजन कब तक होता, थोड़ी ही देर में फिर उनकी आँतें कुन मुनाई और उन्होंने आशा भरी दृष्टि से साथियों की ओर देखा। साथी तो रोज के भुक्त-भोगी थे, उन्होंने पण्डितजी की परेशानी का आसानी से अनुभव किया और कहा—महाराज परेशान न हूजिए, ऐसे ही अवसरों के लिए तो आप सब ज्ञानी-गुनी जन 'आपत्ति काले मर्यादानास्ति' का सिद्धान्त बताते हैं। हाजिर है मेवा में

इसके पश्चात् उसके अन्त स्वरों में अपने आप ध्वनित हो उठा।

नम कमलवासिन्यै ! नारायण्यै नमो नम ।
कृष्ण प्रियायै सारायै पद्मायै च नमो नम ॥

लक्ष्मी और मानवता

सर्व सिद्धि दात्री लक्ष्मी को अपने घर में प्रतिष्ठित करने के दूसरे ही दिन से उस किसान पत्नी का नित्य नियम था कि सन्ध्या समय घर गृहस्थी के काम से निबट समयानुसार घड़ी आध घड़ी लक्ष्मी जी की प्रतिमा के निकट बैठ शुद्ध मन से कुछ न कुछ चिन्तन मनन करती। उसमें जब जो शकाएँ आतीं उन्हें लक्ष्मी जी के सम्मुख ऐसे रखती जैसे कोई विनम्र जिज्ञासु अपने विद्या गुरु के सम्मुख अपने अनजाने पाठ को रखता हो और उसकी साधना क प्रभाव से उसकी शकाओं का समाधान भी ऐसे ही हो जाता जैसे उसका तत्व वेत्ता गुरु उसके सम्मुख विराजमान होकर कर रहा हो।

एक दिन उसके मन मे शका हुई कि क्या कुछ ऊँची जाति कहे जाने वाले व्यक्ति ही लक्ष्मी जी के स्नेह के अधिकारी हैं ? जिन्हें लोग शूद्र या नीची जाति का कहते हैं वे तन मन से शुद्ध होकर भी क्या उनके वात्सल्य के अधिकारी नहीं हैं ? अपनी इस शंका के कितने ही समाधान उसने खोजे पर मन को सन्तोष न हुआ। तब उसने श्रद्धा के साथ लक्ष्मी जी के सम्मुख माथा टेका। और उसके मस्तिष्क में एक कहानी अकित हो उठी—

बात उड़ीसा जगन्नाथ पुरी की है। कहते हैं एक बार एक हरिजन भक्त श्रद्धा के आवेश मे भगवान के दर्शनार्थ मन्दिर मे जा पहुँचा। पुजारी जी ने अछूत को मन्दिर मे आया देख आवेश मे आ चरणामृत देने के स्थान पर हाथों से मार, बाहर खदेड़ दिया।

अपने पार्षदों के साथ सिंहासन पर विराजमान भगवान यह सब देख रहे थे, पर लगा कि जैसे उनके मन पर इसका कोई प्रभाव हो

न हुआ हो। पर वहीं उनके साथ आनी लक्ष्मी जी को पुजारी जीका यह व्यवहार खटका। और जैसे ही अनुकूल अवसर मिला कि उन्होंने उलाहने के स्वर में भगवान से कहा—



भगवान, आपके दरबार में तो मानव के द्वारा मानव का ऐसा अपमान नहीं होना चाहिए।

भगवान ने लक्ष्मी जी की बात सुनी और सहज भाव से कहा—देवि, मातृजाति स्वभाव से ही सरल और उदार हृदय होती है। ऐसे व्यवहारों से उसका दुखी होना स्वाभाविक है। पर पुरुष जिन्हें परम्परागत मर्यादाओं का पालन करते हुए संसार चलाना होता है, वे कहाँ तक ऐसी बातों का विवेक करने बैठें ? यह तो संसार है, अगर इस तरह देख देखकर चलें तो निभना निभाना ही कठिन हो जाय।

भगवान की बात सुन लक्ष्मी जी ने अनमने स्वर में कहा—ठीक है महाराज, आप पुरुष हैं, समर्थ हैं, जो भी करें वह सो सब शोभा देता है। पर मरण तो स्त्री जाति का है, जिसे आप लोगों के चलते उचित अनुचित, मान अपमान सभी कुछ सहना है। पर महाराज ध्यान रहे कि एक दिन सभी का आता है। इसी लिए समर्थ और सहृदय जनों की नीति है—

समय समय को देखिए समय समय की बात।
काहु समय में दिन बड़ो काहु समय में रात॥

यह ठीक है कि हम आज सभी कुछ सहन कर रही हैं, पर भगवन् सहन शक्ति की भी एक सीमा होती है, और फिर जब बात उस सीमा के बाहर हो जाती है तब किसी को भी अपना वेग सभालना कठिन हो जाता है। इसी लिए आपसे निवेदन है कि मुझसे अब और अधिक

न सहा जायगा कृपा कर मनुष्य के द्वारा होनेवाले मनुष्य के अपमान को रोकें।

लक्ष्मीजी के स्वर में चढाव देख बलभद्र जी ने बात टालने के लिए बीच में पड़ कर कहा—लक्ष्मी जी ठीक कहती हैं भइया, बात को समझना चाहिए। पर मेरे कहने का मतलब यह भी नहीं है कि हम उसके लिए अभी तत्काल ही लड़ने बैठें। आज कल में जब भी समय हो बात पर समयानुसार विचार करना चाहिए।

बलदाऊ जी के इतना कहने पर उस दिन की बात वहीं समाप्त हो गई। आगे फिर कभी इस सम्बन्ध में कोई चर्चा न उठी। लक्ष्मीजी ने ध्यान पूर्वक देखा कि दाऊ जू या कन्हैया जू किसी के भी मन में जैसे उनकी उस दिन की बात का कोई असर हुआ ही नहीं है। जब कि उनके मन में वह बात निरन्तर काँटे सी कसक रही थी। अस्तु उसी कसक म एक दिन वे किसी से कुछ कहे सुने बिना ही घर से कहीं चली गई।

जब घड़ी दो घड़ी लक्ष्मीजी वहाँ न दिखीं, तब मन्दिर सूना सूना सा लगने लगा। सोचा यहीं कहीं चली गई होंगी, आ जायँगी। पर भोजनों के समय तक भी जब न आई, तब चिन्ता और खोज हुई। किन्तु जब उनकी इस खोज-खबर में कोई सार न निकलता दिखाई दिया तब भूख से विह्वल दाऊजू ने कहा—भइया यह ढूँढ-खोज का काम तो जाने कब पूरा हो, इसलिए इसे तो चलने ही दिया जाय पर साथ साथ पेट पूजा का भी प्रबन्ध होना चाहिए। दाऊ जू की बात सुन कन्हैया जू ने कहा—ठीक कहते हो दादा प्राणी के पाँव पेट से ही लगे होते हैं। इसी लिए भक्तों की आड़ लेकर कहा जाता है—'भूखे भजन न होंय गुपाला, जा लेव अपनी कण्ठी माला'—इतना कह दोनों भाइयों ने भीतर जा मन्दिर का कोना कोना खोजा पर कहीं भी कुछ हाथ न लगा। तब कृष्णजी बलदाऊ जू से चूल्हा सुलगाने को कह आप पुरी में दाल चावल लेने गए।

कृष्णचन्द्रजी के जाते ही बलदाऊ जी ने चूल्हा जला पतेली सँमाजन लगाया और जैसे ही चूल्हा तैयार हुआ पतेली में अदहन रख दिया। और फिर जैसे ही कन्हैया जू दाल चावल लेकर लौटे कि तुरन्त दाल चावल को बिना धोये देख ही उबलते अदहन में डाल दिए। दाल चावल को उबलते अदहन में डालने के बाद दोनों भाई चूल्हा फूँकते-फूँकते परेशान, पर समुद्र के खारे पानी में दाल या चावल किसी का भी एक

दाना सीकनेपकने के निकट न हो रहा था। तब भूख से परेशान कन्हैया जू ने खिचड़ी की पतेली चूल्हे पर से उतार नीचे पटकी और दाऊ जू से कहा—चलो दादा, पुरी में कहीं चलकर बना बनाया भोजन ढूँढ पेट की ज्वाला शान्त करें।

भूख से परेशान कृष्ण बलराम अतिथि के रूप में एक गृहस्थ के घर पहुँचे। गृहस्थ श्रद्धालु था। दोनों भाइयों का स्वागत करते हुए उसने अपनी सामर्थ्य के अनुसार भोजन परोस उनके सम्मुख प्रस्तुत किया।

भोजन करते करते कृष्ण जी ने कहा—दादा, इस भोजन से मुझे आज जो तृप्ति मिल रही है वह साधारण नहीं है।

बलदाऊ जू ने कहा—भैया भूख का भोजन ऐसा ही होता है। और फिर भोजन करानेवाले गृहस्थ की श्रद्धा भी उसमें निहित है। फिर भला यदि उसमें तृप्ति न मिलेगी तो कहाँ मिलेगी ?

दाऊ जू की बात पूरी होते ही कृष्ण जी ने कहा—नहीं दादा ऐसी बात नहीं है। महाभारत के दिनों में मैंने इससे भी कहीं अधिक परेशानी के बाद तीव्र भूख में भोजन किए हैं, श्रद्धा का भी वहाँ अभाव न होता था। पर इस भोजन में जो तृप्ति मुझे मिल रही है उसका रस ही कुछ और है। ऐसी तृप्ति तो मुझे केवल लक्ष्मी जी के बनाए भोजनों में ही मिलती है। इससे मेरा विश्वास है कि इस घर में लक्ष्मी जी हैं।



बलराम जी ने मुँह का कौर निगलते हुए कहा—तुम भी कहाँ की बात करते हो कान्हा, भला इस अनजान, स्थान में लक्ष्मी जी कहाँ ?

नहीं दादा, मेरा दृढ़ विश्वास है कि यहाँ लक्ष्मी जी हैं। कृष्ण ने गम्भीरता के साथ इतना कहा, और लक्ष्मी जी की खोज प्रारम्भ हुई।

जगन्नाथ स्वामी के रूप में प्रतिष्ठित कृष्ण की बात सही निकली। लक्ष्मी जी वहाँ थीं। पता लगने पर जब वे सबके सामने आईं, तब कृष्ण जी ने कहा—देवि, बहुत हुआ, तुम्हारे आज के थोड़े से ही अभाव ने हमें, 'धिक् गृहम् गृहणीम् बिना" का अच्छा अनुभव करा दिया। तुम्हारे न होने से हम दोनों भाइयों को आज जो गति हुई उसे हमीं जानते हैं। अब कृपा कर घर चलो।

कृष्ण की बात सुनकर लक्ष्मी जी ने कहा—भगवन्, अपराध क्षमा हो, किन्तु जहाँ मनुष्य मनुष्य म प्रेम न हो, एक दूसरे को अपने से छोटा समझ अपमानित और लाञ्छित करे। वहाँ मैं किसी भी प्रकार रहने में असमर्थ हूँ। और फिर कृपा कर यह तो बताइए कि जिस व्यक्ति के घर आप भोजन कर रहे हैं, वह कौन है? क्या आपने इसका भी विचार किया है?

कृष्ण बलराम को निरुत्तर देख लक्ष्मी जी ने बात को आगे बढाते हुए कहा—यह आपका वही भावुक और श्रद्धालु भक्त है जिसे आपके पहिरेदार पुजारी जी ने धक्का देकर मन्दिर के बाहर कर दिया था। कृपा कर बताइए इसकी धार्मिक निष्ठा तथा रहन सहन वा आचार व्यवहार में किस उच्चकुलाभिमानी से कमी है?

'बुभुक्षित किम् न करोति पापम्' कहते हुए कृष्ण ने कहा—लाचार के आगे विचार नहीं होता है। जिस समय हम लोग यहाँ आए भूख के मारे बेचैन थे। उस समय जिस व्यक्ति ने श्रद्धा के साथ हमारे पेट की ज्वाला को शान्त किया। हम उसकी जाति पाँति कैसे पूछें?

कृष्ण भगवान की बात पूरी होते ही लक्ष्मी जी ने कहा—यही तो मैं भी कहती हूँ भगवन् की 'जाति-पाँति पूँछे नहि कोई, हरि को भजे सो हरि को होई।' और भगवन् किसी जाति वा कुल विशेष म जन्म लेन से वा कोई धन्धा विशेष करने से ही किसी को छोटा बड़ा नहीं माना जाना चाहिए। आपके सिद्धान्तों के पुजारियों का ही तो कहना है कि जन्म से सभी प्राणी शुद्ध और सत्य होते हैं। यह बात दूसरी कि परिस्थितियों में पड कर कोई अपने पथ से कुछ विचल हो जाय, पर इससे उसके भीतर बैठे मानवात्मा का अनादर या तिरिस्कार तो नहीं होना चाहिए। और फिर जिस प्रकार आज कोई एक व्यक्ति समय चक्र की गति के कारण अपने उचित और सांस्कृतिक पथ से विपथ

हो सकता है उसी प्रकार फिर कभी यही परिस्थितियाँ और समय चक उसे सुपथ पर भी तो ला सकते हैं। और फिर महाराज आपके ही नियमों म कहा है कि हमारी घृणा या द्वेष पाप से होना चाहिए। पापी से नहीं। और जब आत्मा के रूप में ही परमात्मा का आदर माना गया है, तब थोथी जातीयता के नाम पर मानव का अनादर क्यों कर हो ?

लक्ष्मी जी आगे कुछ और भी कहने जा रही थीं कि दाऊ जू ने बीच में ही उनकी बात को रोकते हुए कहा—महामाये ! जो हुआ सो हुआ। अब बात को आगे बढ़ाने में नहीं पीछे पछेलने में ही सार है। रोष छोड़ चलो और अपना घर देखो। वहीं शान्ति के साथ बैठ कर सारी बातों पर विचार करना ठीक होगा।

दाऊजू की बात पूरी होते ही लक्ष्मी जी हाथ जोड़ कर बोलीं— दाऊजू, आपकी आज्ञा सिर माथे। मैं चलती हूँ। पर ध्यान रहे कि जाति पाँति के नाम पर मानवता का अपमान न हो। और इसी के साथ मेरी एक यह शर्त और भी है कि जब तक यह बात सहज स्वाभाविक ढग से कार्य रूप में परिणित न होगी मैं मन्दिर में तो रहूँगी, पर आप सबके साथ सिंहासन पर न बैठ पीछे और देवताओं के साथ कहीं भी बनी रह घर को व्यवस्थित बनाए रहूँगी।

दाऊ जी की प्रतिज्ञा के लिए लक्ष्मी जी को शान्त होते देख जगन्नाथ जी ने कहा—देवि, अब घर चल कर जो उचित समझना सो करना, पर अब इस समय तो शीघ्र ही चलना चाहिए। कारण कि भक्त-जन सन्ध्या कालीन दर्शनों के लिए आते होंगे यदि उस समय हम लोग सिंहासन पर न मिले तो बड़ी विडम्बना होगी।

कृष्ण के इतना कहते ही लक्ष्मी जी उठीं, और उनके उठते ही कृष्ण बलराम ने भी उठ कर अपने उस श्रद्धालु आतिथेय का आभार मान उसे आशीष दिया और तीनों जनें मन्दिर की ओर चले।

नित्य नियम के अनुसार जब सन्ध्या समय मन्दिर के पट खुले तब पुजारी ने देखा कि सिंहासन पर कृष्ण बलराम तो विराजमान हैं पर लक्ष्मी जी उनके साथ वहाँ नहीं हैं। वह पीछे और देवताओं के साथ हैं। देख कर पुजारी पहिले तो घबड़ाया, पर उसके घबड़ाते ही वहाँ जगन्माता की एक प्रति मूर्ति अपने आप आकर प्रतिष्ठित हो गई। और उसकी प्रतिष्ठा के साथ ही किसी दिव्य ज्योति ने पुजारी के अन्तः

में प्रेरणा देते हुए कहा—अब आगे से जगन्नाथ स्वामी के मन्दिर में मानव मानव में जातीयता का भेद-भाव न होगा, और जब तक जन जन के व्यवहार में यह बात न आ जायगी तब तक ऐसा ही रहेगा।

कहानी के मन में बैठते ही गृहस्वामिनी ने मूर्ति के आगे माथा टेका और उसके श्रद्धा भरे गद् गद् स्वरों से गुञ्जरित हो उठा—

या श्रीः स्वयं सुकृतिना भवनेष्वलक्ष्मी
पापात्मानां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि! विश्वम् ॥



मातृ-पितृ सेवा और लक्ष्मी

एक दिन की बात है। गाँव में धार्मिक सम्मेलन था। बड़े बड़े विद्वान् उस सत्संग में भाग लेने आए थे। यह जिज्ञासु दम्पति भी धर्म का संदेश लेने वहाँ पहुँचे। बच्चे भी साथ में थे। जिस समय यह सभा स्थल पर पहुँचे एक स्वामी जी भारतीय संस्कृति पर अपने विचार प्रकट कर रहे थे। बड़ा ही सुन्दर ढंग उनके कहने का था। कड़वी से कड़वी बात भी वे तरह तरह के दृष्टान्तों के साथ ऐसे कहते कि सुनने वालों का मन बिगड़े बिना ही बात हृदय में चुभ जाती। एक प्रसंग में स्वामीजी ने कहा—

पण्ढरपुर में पुण्डरीक नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। उत्तर-भारत की तीर्थयात्रा कर गंगा-यमुना स्नान का संकल्प उनका था। बड़ी दूर की यात्रा थी रेल मोटरें तब थीं नहीं। ऐसी स्थिति में सर्व साधारण को दूर दूर की यात्राएँ भी पैदल ही करनी होती थीं। इसी लिए लोग उन दिनों कहा करते थे—

पग-पवित्र तीरथ किए कर पवित्र किय दान।
मुख पवित्र हरिभजन किय श्रवण सुनें हरि-गान ॥

पुण्डरीक की यात्रा के दिन गाँववालों ने मन के सारे कलुष दूर कर पुण्डरीक को फूल माला पहिनाई। छाती से लगाया और स्नेह के साथ

तीर्थ यात्रा के लिए विदा किया। पुण्डरीक ने भी सबको हाथ जोड़े, सबकी शुभ कामनाओं का बल लिया और हरि गुण गाता अपने पथ पर चल दिया। गाँव वाले भी उसके कीर्तन के स्वरों में अपने स्वर मिलाते गाँव के बाहर कुछ दूर तक पहुँचा उसके साहस की सराहना करते लौट आए।

रास्ते में रैदास नाम के व्यक्ति का घर पड़ा। उसने स्नेह के साथ पूछा कहाँ जा रहे हो, पुण्डरीक भैया !

गंगा यमुना की तीर्थ यात्रा का पुण्य लेने जा रहा हूँ। पुण्डरीक ने श्रद्धा के साथ बताया।

पुण्डरीक की बात सुन रैदास ने उत्सुकता के साथ कहा—एक पैसा मेरा भी लेते जाओ भैया। गंगा मैया को भेंट कर देना।

पुण्डरीक के हामी भरते ही रैदास भीतर गया और लौटकर अपनी श्रद्धा के पत्र पुष्प पुण्डरीक को दे उसके चरण छुए। पुण्डरीक ने रैदास की भेंट ली और श्रद्धा के साथ गाया—

"सपर आव कासी जू की किरियाँ रे कट जायँ जनम के पाप"।

इस प्रकार सबसे विदा हो गंगा जमुना के गीत गाते पुण्डरीक दम्पति अपने पथ पर आगे बढ़े। चलते चलते कई दिन पीछे गंगा मैया के पवित्र अंचल में पहुँचे। जितने दिन बीच में रुके-बसे हर पड़ाव पर सत्संग का लाभ उन्होंने उठाया। जब जिस गाँव मे पहुँचते गाँववाले गंगा स्नान के लिए जाने वाले—'गंगोइया' जानते ही इनके ठहरने की समुचित व्यवस्था करते। ईंधन, कपड़ा, सीधा पानी जहाँ जैसा होता गाँव वालों की सुविधा और इनकी आवश्यकता के अनुसार इन्हें मिल जाता। रात में दस पाँच सयाने लोग इनके पास बैठ रामभजन करते। कुछ ज्ञान चर्चा करते भक्ति पक्ष की कहानियाँ कह इनका और अपना दिन भर का श्रम हलका कर कल के लिए नया पुलक और नयी प्रेरणा देते-लेते।

गंगा तट पर पहुँचते ही पुण्डरीक दम्पति ने गंगा मैया की चमकीली रेणुका मस्तक पर चढ़ा, उनकी जय बोली। एक ठिकाने डेरा जमाया और स्नान कर गंगा मैया की पूजा कर अपनी साध पूरी की।

अपनी पूजा के निबटते ही पुण्डरीक की पत्नी ने रैदास की भेंट का स्मरण कराया। पुण्डरीक ने अपनी ही जैसी पूजा की भावना से रैदास की भेंट निकाली और श्रद्धा के स्वरों में कहा—

'हे पतित पावनी गंगा मैया मेरे हाथों यह रैदास भगत की भेंट स्वीकार कीजिए'। पुण्डरीक के इतना कहते ही गंगा मैया की निर्मल धारा में से दो कोमल हाथ ऊपर उठे और भेंट ले जहाँ के तहाँ विला गए।

रैदास की भेंट के नाम पर गंगा मैया का यह चमत्कार देख पुण्डरीक के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्हें असमंजस में पड़ सोचना पड़ा क्या कारण है जो रैदास की भेंट के नाम पर गंगा मैया ने उसे लेने के लिए ऐसे हाथ पसारे जैसे उसी के लिए उपासी बैठी हों। प्रयत्न करने पर भी जब कोई समाधान उन्हें अपनी शंका का न मिला, तब श्रद्धालु पुण्डरीक अपनी आगे की यात्रा स्थगित कर रैदास की भक्ति का रहस्य जानने के लिए उन्हीं के पास चल पड़े। रास्ते भर तरह तरह के संकल्प-विकल्प रैदास की अनूठी साधना और गंगा मैया के चमत्कार को ले कर उनके मन में आते रहे।

पुण्डरीक जैसे ही रैदास के घर के निकट पहुँचे कि रैदास ने दूर से ही इन्हें आता देखा और श्रद्धा के साथ आगे से लेने बढ़े। दोनों ने गंगा मैया की जय बोली और एक दूसरे के गले मिले। रैदास ने पुण्डरीक की चरण रज माथे पर चढ़ाई और पूछा—बड़ी जल्दी लौट आए भैया?

रैदास की बात सुन पुण्डरीक ने कहा—लौटने का मन तो अभी नहीं था। घर से और आगे का विचार करके गए भी थे। पर तुम्हारी पूजा के प्रभाव ने लौटने को विवश किया है।

'तुम्हारी पूजा के चमत्कार ने लौटने को विवश किया' पुण्डरीक के मुँह से इतना सुनते ही रैदास ने आश्चर्य के स्वर में पूछा—ऐसा कौन सा कौतुक मेरी पूजा ने किया है भैया जिसके कारण तुम्हें पीछे लौटना पड़ा। मुझे दुःख है अपने अपराध पर जिसके कारण तुम्हारी यात्रा अधूरी रह गई। मुझे क्षमा करो पुण्डरीक भैया।

किसी के क्षमा माँगने या अपराधी होने की बात नहीं है रैदास! मैं तो तुम से ही तुम्हारी साधना का रहस्य जानने आया हूँ। जिसके कारण गंगा मैया ने हाथ बढ़ा कर तुम्हारी पूजा को ऐसे स्वीकार किया है मानों समय से उसकी प्रतीक्षा में बैठी हों। जब कि केवल मेरी ही नहीं और भी अनगिनते श्रद्धालु भक्तों की पूजा पर उसके हाथ तो क्या एक लहर भी कभी ऊपर नहीं उठी। बताओ रैदास ऐसी कौन-सी साधना करते हो जिसके चमत्कार ने मुझे चौंका दिया है।

पुण्डरीक की बात सुन रैदास ने कहा—पुण्डरीक भैया, मैं भी कोई साधना करता हूँ, तुम्हारे मुँह से यह जान कर मैं स्वयं अचरज म हूँ। मैं भला किसी साधना में क्या जानू ? हाँ, इतना अवश्य है कि मन को चंचल बनाए बिना श्रद्धा और सद्भाव से अपना काम करता हूँ। और भगवान की दया से जो देवता घर में प्रतिष्ठित हैं विश्वास के साथ उन्हीं की सेवा पूजा किया करता हूँ। उन्हीं की आराधना में काशी और प्रयाग सबकी अनुभूति करता हूँ। रैदास की बात पूरी होते ही पुण्डरीक ने कहा—रैदास भैया, यदि कोई आपत्ति न हो तो हमें भी अपने उन देवताओं के दर्शनों का लाभ कराओ। हम भी उनके पुण्य स्पर्श से कृतार्थ हों। पुण्डरीक की बात सुन रैदास आदर के साथ उन्हें घर ले गए। रैदास के घर पहुँचते ही पुण्डरीक ने देखा, घर में दो बड़े-बड़े झूले पड़े हैं, एक में एक वृद्धा बैठा है और दूसरे में वृद्ध। दोनों के बीच में बैठी एक महिला प्रसन्न चित्त दोनों झूलों की रस्सियाँ खींच रही है।

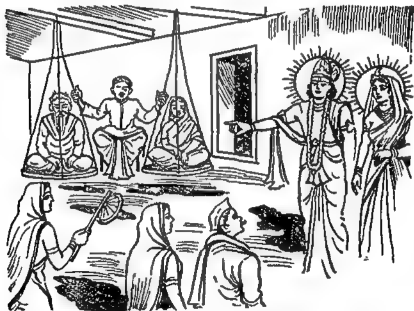
रैदास ने स्त्री के हाथ से रस्सी ली और कहा-देवी आज अपना अहोभाग्य जो यह अतिथि देवता अपने घर पधारे हैं। जैसा भी रूखा सूखा बन सके इनका सत्कार कर अपने को कृतार्थ करो।

रैदास की बात होते होते पत्नी ने पुण्डरीक दम्पत्ति के लिए आसन बिछाया और उस पर उन्हें बिठा आप भीतर चली गई। महिला के भीतर जाते ही पुण्डरीक ने रैदास से कहा—रैदास जी आप हमारे आतिथ्य-सत्कार में तो लग गए, पर अपने उन देवताओं के दर्शन न कराए। जिनकी सेवा से आपको यह सिद्धि मिली जिसने मुझे चमत्कृत किया है। पुण्डरीक की बात सुन रैदास ने कहा—

पुण्डरीक भैया, अतिथि देवता की सेवा का सुयोग बड़े भाग्य से मिलता है। अतिथि देवता को भगवान का रूप ही अपने यहाँ माना गया है। अतिथि देवता के दर्शन वा सेवा का सुयोग रोज रोज किसे मिलता है। अस्तु वह तो गृहस्थ का मुख्य काम है ही। और जिन देवताओं के दर्शनों की बात आप कर रहे हैं, वह यह मेरे वृद्ध माता पिता हैं। इन्हीं की सेवा पूजा हम दोनों पति-पत्नी किया करते हैं। जिस समय इनके स्नेह भरे हाथों का पुण्य स्पर्श हमारी पीठ और सिर पर होता है उस समय हमारे आनन्द की सीमा नहीं रहती। उनकी कृपा और स्नेह का धन पाकर किसी और धन की कामना फिर नहीं रहती। न जाने किन

सुकृतों के सयोग से वृद्ध माता पिता की सेवा का यह सुयोग मिला है। यही मेरी गगा यमुना और काशी प्रयाग हैं।

रैदास और पुण्डरीक की यह बातें हो ही रही थीं कि रैदास की पत्नी ने पुण्डरीक दम्पति के लिए भोजनों के थाल ला उनके सामने रख पखा करने लगीं। रैदास वृद्ध माता पिता का झूला खींच रहे थे। इतने में ही किसी ने बाहर से किवाड भड़काए। किवाड़ों की भड़भडाहट सुन रैदास ने श्रद्धा के साथ कहा भैया तनिक रुको अभी आए। और फिर जब पुण्डरीक दम्पति भोजन कर चुके तब रैदास की पत्नी ने अतिथि सेवा



से निबट पौर में जा किवाड़ खोले। किवाड़ खुलते ही तब से अब तक प्रतीक्षा में बाहर बैठने वाले भीतर आए।

बाहर वालों के भीतर आते ही पुण्डरीक दम्पति ने उत्सुकता के साथ उनकी ओर देखा, और देखने के साथ ही उनके चरणों में जा गिरे विस्मय भरे स्वरों में कहा—

कमलनयन, आप यहाँ कहाँ ? क्या आप ही किवाड़ भड़का रहे थे ?

पुण्डरीक की बात सुन आने वालों ने कहा—हाँ पुण्डरीक हम ही

किवाड़ भड़का कर तब से अब तक उनके खुलने की प्रतीक्षा में बाहर बैठे थे। जिस प्रकार मेरे अनगिनते भक्त मुझे पाने की लालसा में मेरे नाम की माला जपा करते हैं, वैसे ही मैं भी अपने कुछ सुकृती भक्तों की खोज में लगा रहता हूँ। बड़े भाग्य से ही माता पिता और अतिथियों की सक्रिय सेवा करने वाले श्रद्धालु भक्तों के दर्शन होते हैं। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, और अतिथि देवो भव का मंत्र जाप तो न जाने कितने भक्त करते हैं, पर क्रियात्मक रूप में उसका पालन कहीं कहीं ही होता है। और जहाँ वह होता है, वहीं मुझे सच्ची शान्ति और स्नेह मिलता है। मैं और मेरे साथ सर्व सिद्धिदायिनी लक्ष्मी अपनी समस्त शक्तियों के साथ अचल होकर वहाँ निवास करते हैं।

भगवान लक्ष्मीनारायण तो पुण्डरीक दम्पति को सिद्धि का सन्देश दे वहीं अन्तर्धान हो गए और पुण्डरीक दम्पति गद्‌गद् स्वरों में उनका गुण गान करते रह गए। रैदास दम्पति पर इसका क्या प्रभाव हुआ इसे कोई न जान पाया। वे अपने देवताओं की सेवा में ही संलग्न रहे।

श्रोताओं ने प्रेम से स्वामी जी का प्रवचन सुना। और जैसे ही वह पूरा हुआ कि सब अपने कपड़ों की धूल झाड़ रैदास भगत की जय बोलते अपने नोन तेल लकड़ी की उलझनों में उलझे घर की ओर चल पड़े।

यह दम्पति भी उठे और किसी से कुछ कहे सुने बिना ही मौन विचार मग्न से घर को चल पड़े। बच्चे भी साथ थे। उन्होंने भी भाषण सुना था। उनके चंचल मन पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई यह तो कोई मनोवैज्ञानिक जाने या भगवान जाने। पर उनके स्वरों में जो गूंज थी उसमें दृढ़ता थी। श्रद्धा थी। संगति का प्रभाव था। वे चलते चलते कह रहे थे—मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, अतिथिदेवो भव—

लक्ष्मी और अहम्

एक दिन जैसे ही वह गृह स्वामिनी हिरण्यगर्भा लक्ष्मी जी का श्रद्धार्चन कर ध्यानावस्थित होकर बैठी, कि उसे लगा मानों उसके सम्मुख कोई देवी साक्षात् विराजमान हो अपने लाल लाल ओठों से अपने

आस-पास के वातावरण को पुलकित कर रही हो। उसी के साथ उसे यह भी आभास हुआ मानों उन फरकते रदपुटों से निकलती कोई म न्द ध्वनि उसके अन्तस् में प्रवेश कर रही है।

अन्तस् में पैठती उस ध्वनि से प्रभावित हो उसका सार सजोने सहेजने के लिए वह कुछ और सजग और जागरूक हो बैठ गई। तब उसे स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा—

कोई कुछ भी कहे, पर मैं किसी की लांच्छना या उपालम्भ का ध्यान किए बिना अपने सिद्धान्त पर दृढ़ता के साथ अडिग होकर रहती हूँ। जहाँ भी मुझे दिखता है कि व्यक्ति अपने नित्य नियमों में गिर रहा है, मैं उस स्थान व वहाँ के रहने वाले व्यक्तियों को तुरन्त छोड़ अन्य स्थान को चल देती हूँ। भले ही कोई मेरी इस बात को मेरी चचलता अथवा मेरा दम्भ कहे, पर मैं कहती हूँ कि यह मेरा अहम् नहीं सहज स्वाभाविक नियम है। मैं मानती हूँ कि अहम् का बीज ही व्यक्ति के विनाश का मूल कारण है। जैसा कि किसी सांस्कृतिक विचारक ने कहा है—

> अम्बा फले तो नव चले अण्ड फलै इतराय।
> अतिको फूलो सहिजना डार पात सौं जाय॥

व्यक्ति अपने स्वाभिमान वा आत्म सम्मान की रक्षा तो दृढ़ता के साथ अवश्य करे, पर अपने आचार व्यवहार में अपनी शक्ति या वैभव का अभिमान भूल कर भी न आने दे। पर मैं जानती हूँ कि यह है कितना कठिन। बड़ों बड़ों का आसन इसमें डिग जाता है। विख्यात है—

> श्री-मद वक्र न कीन्ह किहिं प्रभुता काहि न खाहि।
> मृगनैनी के नयन शर को अस लाग न जाहि॥

और की तो बात ही क्या एक बार देवराज इन्द्र के मन में भी जब अपने अहम् का उदय हुआ था, तब मुझे तो उन्हें दिए गए ऋषि के शाप वश समुद्र में समाना ही पड़ा था, पर एक देवराज इन्द्र, के अहम् के कारण सारे संसार को कुछ समय के लिए संकट का सामना करना पड़ा था। यह बात उस समय की है जब मैं सिन्धुजा न होकर भृगु कन्या के रूप में थी। जिसकी कथा इस प्रकार है—

बात पौराणिक काल की है। एक बार दुर्वासा ऋषि ने इन्द्र से भेंट होने पर सुवासित पारिजात पुष्पों की एक सुन्दर माला उन्हें भेंट

की। देवराज ने श्रद्धा के साथ ऋषि के हाथों से माला ले मस्तक से लगा ऋषि का आभार मान उन्हें प्रणाम किया। पर जैसे ही ऋषि वहाँ से गए कि इन्द्र ने उस माला को मदमाते ऐरावत की सूँड पर लपेट दिया।

ऐरावत बेचारा भला पारिजात पुष्प का महत्त्व क्या जाने वह तो कौतूहल के साथ उसे उछालता-खेलता चलने लगा। जिससे उसके फूल जहाँ-तहाँ बिखरने गिरने लगे। इन्द्र ने कोई ध्यान उस ओर नहीं दिया। बात भी कुछ वैसी न थी।

संयोगवश ऋषि फिर वहीं से लौटे। और उन्होंने देखा कि उनके दिये हुए श्री-सम्पन्न पुष्पों की यह गत हुई है, उनका क्रोध भड़क गया। क्रोध के लिए दुर्वासा विश्व में प्रसिद्ध थे। ताव में आकर उन्होंने इन्द्र के



अहम् को चुनौती देते हुए शाप दिया—इन्द्र के मन में अपनी स्मृद्धि का घमंड हो गया है, इसी लिए तो उसने मेरे द्वारा दिये फूलों की जिनमें श्री और स्मृद्धि की देवी निवास करती है यह अवमानना की है। अस्तु मैं अपने समूचे तेज बल को सहेज शाप देता हूँ कि आज से स्मृद्धि की देवी

लक्ष्मी न तो इन्द्र के स्वर्गोद्यान में ही रहेंगी और न धरती पर ही। वरन समुद्र के गर्भ में समा वहीं निवास करेंगी।

ऋषि के शाप से एक क्षण म ही ससार के सामने कठिन सकट उपस्थित हो गया। जहाँ देखो वहीं दुख-दारिद्र का उत्पीड़न था। देव दानव और मानव सभी श्री हीन हो त्राहि त्राहि करने लगे। तब स्वय भगवान विष्णु ने समष्टि हित की भावना से देव-दानवों के सम्मिलित प्रयत्न से समुद्र मंथन कर मुझे पुनः प्राप्त करने का उपाय बताया। देव दानवों ने आपस में मिलकर मदराचल पर्वत के रूप में अपने सतसकल्पों की मथानी और वासुकी नाग के रूप में काल से जूझने की अपनी क्षमता की जोतियाँ—'रस्सी'—बना उसके विष की फुफकारों के ताप को सहन करते हुए समुद्र मथन किया। तब कहीं अन्य तेरह रत्नों के साथ मैं समुद्र के गर्भ से प्रकट हो भगवान विष्णु के पास रहने लगी हूँ। कहने के लिए तो मैं भगवान विष्णु के पास रहती हूँ, पर मेरा प्रभाव और मेरा उपभोग समष्टि के लिए है। यदि कोई मुझे पा कर केवल अपने या अपने कहे जानेवालों के लिए सुरक्षित कर रखना चाहता है तो यह उसकी और उसे लक्ष्मीवान समझनेवालों की भूल है। पाप तो वह है ही। उसके लिए तो उतना ही है जितना कि उसके व्यवहार मे आता है। शेष को रोकना उसके पतन और क्लेश का कारण है। न उसमें सुख है, न शान्ति है। कोरी छलना और दम्भ है।

सुख और शान्ति तो तभी है, जब व्यक्ति 'जियो और जीने दो' की मगलमयी भावना के साथ प्रेम-पूर्वक विनम्रता बरतता चले। कोई समझे या न समझे पर किसी दूर-देश विचारक ने व्यजना के स्वरों मे कहा है—

बारह चौतीस छप्पन नवासी। करगनि लेहु करहु जनि हाँसी॥

अर्थात् तुम एक से लेकर गणना की अतिम सीमा भी तक जितना भी मन हो गिनते सँभालते धरते चलो,पर सावधान! उस सत्यहीन गणना के अत में केवल शून्य ही हाथ रहेगा। इस लिए अपने को धनाढ्य या श्री सम्पन्न बनने का मिथ्याभिमान कर अपनी हँसी न कराओ। वरन्, 'राम की चिरइयाँ, राम के खेत' कह निरभिमानता और सौहार्द्र भाव से सबको खाते खिलाते चलो। इसी में तुम्हारा और ससार का मगल है।

बात के अन्तस में बैठते ही गृहस्वामिनी ने मन ही मन श्रद्धा के साथ लक्ष्मीजी की वन्दना करते हुए कहा—

पायात्पयोधिदुहितु कपोलामलचन्द्रमा ।
यत्र सक्रान्तबिम्बेन हरिणा हरिणायितम् ॥

लक्ष्मी और तुलसी

यद्यपि यह ठीक है कि सुख-समृद्धि एवं सम्पन्नता पाकर किसी के भी मन मे अहम्, बुद्धि में विकार, और देह में सुकुमारता या मात्सर्य जो भी जो माने आ जाना असम्भव न होकर सहज स्वाभाविक ही होता है, पर सभी जगह यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है। ससार में जहाँ इस प्रकार के प्राणियों की बहुलता होती है, वहीं कुछ सुधी सुसस्कृत जन ऐसे भी होते हैं जो अपनी श्री, सम्पन्नता की वृद्धि में और और विनम्र एवं क्रिया शील होकर चलते हैं। यह गृह-स्वामिनी भी ऐसे ही गिने-चुने अपवादों में से एक थी।

जैसे-जैसे उसके कच्चे, मटमैले घर में लक्ष्मी का प्रकाश फैला वैसे ही वैसे उसका स्वभाव भी सरल, उदार और पर दुःख कातर बनता गया झगड़ालू तो वह पहिले ही न थी। पराए धन जन को फलते फैलते देखकर अपना मन कभी विचलित या कलुषित न करती थी। फिर अब तो भगवान की दया से सभी कुछ उसे प्राप्त था। गौशाला में सुन्दर और दुधारू गाएँ थीं, बलिष्ठ बैल और बछड़े थे। उन सबके चारे दाने और परिचर्या का भरपूर प्रबन्ध था। खेतों में यथा समय खाद पानी मिलने से नित नए धान उनमें उपजते थे। घर के पुराने तुलसी के बिरवे और फूलों के पौधे तो और और हरे भरे हो ही रहे थे, पर आम, जामुन और नीबू, अमरूद आदि के पौधों की एक हलकी सी बगिया भी बसने लगी थी। नौकरों चाकरों के होते हुए भी वह अपने सभी कार्यों को नियम से देखती सँभालती थी। रोटी पानी का काम तो वह अपने हाथों करती ही थी पर घर बाहर की झाड़ा बुहारी देखने से भी उसकी नजर चूकती न थी इतना ही नहीं अहम् में आकर समय समय पर खेत खलिहान का

असुविधा न हो। वरदान भी तो ऐसा ही माँगना चाहिए, जिससे अपने साथ यदि दूसरों का हित न हो तो अहित भी तो न हो।

सुरथ ने शिवजी की बात सुनी, और विनम्रता के साथ हाथ जोड़कर कहा—देव, कुछ भी हो, पर मेरी तो एक ही कामना है कि नित्य नियमानुसार अपने निर्माता, पालक और अन्त में अपने में लय करने वाले देवताओं के दर्शन कर आत्म विश्वास के साथ उनमें रमूँ और अपने कर्तव्य-कर्म का पालन करूँ। और उसी की पूर्ति के लिए जगज्जननी पारवतीजी की भाँति मेरा कहना है—

जनम कोटि लगि रगरि हमारी, बरौं शम्भु नतु रहौं कुमारी ॥

सुरथ की दृढता पूर्वक कही गई बात सुन भोले बाबा बड़ी उलझन में पड़ गए। यदि उनके अकेले की बात होती तब तो किसी प्रकार निपट भी लेते। पर साथ में ब्रह्मा और विष्णु भी जुड़े थे। पारस्परिक विरोध न होते हुए भी दूसरे का जिम्मा वे कैसे ले लेते। सदा से ही पराया मन परदेशी बराबर माना गया है। इस प्रकार उलझन में पड़े आशुतोष शिव अपनी फैली जटाओं में उंगली डाल सिर खुजलाने लगे। मन ही मन ब्रह्मा और विष्णु के ऊपर बड़ी खीझ उन्हें आ रही थी। वे नहीं जान पा रहे थे कि क्यों इन दोनों ने अपनी यह बला उनके सिर बड़प्पन का बोझ डालकर मढ दी।

सिर खुजलाते-खुजलाते एक उपाय शिवजी को सूझा, जिसके मन में आते ही उन्होंने ब्रह्मा और विष्णु का आवाहन कर उनसे परामर्श किया और तब एक मत हो सुरथ से कहा—

जाओ राजन, आज से तो नहीं पर कुछ दिन आगे चलने पर जब तुम्हारी रानी की कोख से एक परम सुन्दरी कन्या जन्म लेगी तब समयानुसार उसके अलौकिक प्रभाव के कारण हम तीनों के तीनों ही नियमित रूप से तुम्हारे घर आया करेंगे।

शिवजी की बात सुन सुरथ ने हार्दिक प्रसन्नता और श्रद्धा के साथ शिवजी के साथ ब्रह्मा और विष्णु को प्रणाम किया, और उनके वरदान का बल ले उल्लास के साथ घर आए।

समयानुसार सुरथ की रानी गर्भवती हुई, और गर्भ के दिन पूरे होते ही उनकी कोख से एक परम सुन्दरी कन्या का जन्म हुआ। कन्या को देखते ही सुरथ की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। बड़ा भारी उत्सव उन्होंने

अपने राज्य में मनाया। आचार्य और उपरोहितों के साथ सभी नेगी जोगियों तथा दीन दुखियों को यथोचित दान दक्षिणा दे, कन्या के मंगल के लिये सभी की शुभ कामनाओं का बल ग्रहण किया। कन्या भी सुरथ और उनकी रानी के घर घट में अपनी दीप्ति से आनन्दोल्लास की किरणें फैलाती दिन दिन बढ़ने लगी। जैसी-जैसी वह कन्या बढ़ती थी, वैसा ही वैसा सुरथ के मन में उसके लालन पालन का उल्लास भी बढ़ता चलता था। बस चलते एक क्षण के लिए भी वे उसे अपने से अलग न होने देना चाहते थे।

इस प्रकार माता पिता के स्नेह की सुख सुविधाओं में पलती बढ़ती जब वह राजकुमारी वयस्क हुई तब सुरथ को उसके ब्याह की चिन्ता हुई। और वे अपना तन मन और धन सभी कुछ लगा उसके अनुरूप योग्य वर की तलाश में लग गए। पर विधाता को तो कुछ और ही करना था।

अनायास ही एक दिन वह कन्या कुछ अस्वस्थ हुई। यद्यपि वह साधारण सी ही अस्वस्थ थी, फिर भी सुरथ ने अपनी पूरी शक्ति लगा उसके स्वास्थ लाभ के प्रयत्न किये। पर उनके बड़े से बड़े उपचारों का भी कोई लाभ उसके गिरते स्वास्थ्य को न हुआ। रोग अपनी गति से दिन दिन बढ़ता ही गया इतना कि एक दिन वह कन्या अपनी अलौकिक प्रतिभा से सुरथ के घर को सूना कर अनन्त में विलीन हो गई।

कन्या के प्राण-पखेरू उड़ते ही सुरथ के ऊपर मानों पहाड़ टूटकर गिर पड़ा। वे निष्प्राण से होकर भी दुःख के आवेश में किसी के हाथों में न समा कन्या के शव के ऊपर सिर पटक पटककर रो रहे थे। अपने तन बदन की भी सुध उन्हें न थी। सुरथ ही नहीं उनके सभी करता कामदार और गाँव के लोग उस कन्या की अलौकिक प्रतिभा और गुण कर्मों का स्मरण कर उसके इस प्रकार चले जाने से दुखी थे। पर किसी के रोने से क्या? सभी अपने सुख सुविधा और उल्लास के लिये रोते हैं। पर भगवान् को तो अपने निश्चित, निर्धारित कार्यक्रम से चलना पड़ता है। हम आप भले ही अपने हर्ष शोक में भूल जायें, पर वह है कि अपने क्रम में बाल भर भी फेर कभी नहीं आने देता। जब तक जिसका जिसके साथ संयोग होता है तभी तक वह उसके साथ रहता है और जैसे ही उसके संयोग की अवधि समाप्त होती है वैसे ही तेरे-मेरे की सारी मोह-माया छोड़ वह दूसरी जगह सम्बन्ध स्थापित करने चला जाता है। सारे

असुविधा न हो। वरदान भी तो ऐसा ही माँगना चाहिए, जिससे अपने साथ यदि दूसरों का हित न हो तो अहित भी तो न हो।

सुरथ ने शिवजी की बात सुनी, और विनम्रता के साथ हाथ जोड़कर कहा—देव, कुछ भी हो, पर मेरी तो एक ही कामना है कि नित्य नियमानुसार अपने निर्माता, पालक और अन्त में अपने में लय करने वाले देवताओं के दर्शन कर आत्म विश्वास के साथ उनमें रमूँ और अपने कर्तव्य-कर्म का पालन करूँ। और उसी की पूर्ति के लिए जगज्जननी पारवतीजी की भाँति मेरा कहना है—

जनम कोटि लगि रगरि हमारी, बरौं शम्भु नतु रहौं कुमारी ॥

सुरथ की दृढता पूर्वक कही गई बात सुन भोले बाबा बडी उलझन में पड़ गए। यदि उनके अकेले की बात होती तब तो किसी प्रकार निपट भी लेते। पर साथ में ब्रह्मा और विष्णु भी जुड़े थे। पारस्परिक विरोध न होते हुए भी दूसरे का जिम्मा वे कैसे ले लेते। सदा से ही पराया मन परदेशी बराबर माना गया है। इस प्रकार उलझन में पड़े आशुतोष शिव अपनी फैली जटाओं में उगली डाल सिर खुजलाने लगे। मन ही मन ब्रह्मा और विष्णु के ऊपर बड़ी खीझ उन्हें आ रही थी। वे नहीं जान पा रहे थे कि क्यों इन दोनों ने अपनी यह बला उनके सिर बड़प्पन का बोझ डालकर मढ दी।

सिर खुजलाते-खुजलाते एक उपाय शिवजी को सूझा, जिसके मन में आते ही उन्होंने ब्रह्मा और विष्णु का आवाहन कर उनसे परामर्श किया और तब एक मत हो सुरथ से कहा—

आओ राजन, आज से तो नहीं पर कुछ दिन आगे चलने पर जब तुम्हारी रानी की कोख से एक परम सुन्दरी कन्या जन्म लेगी तब समयानुसार उसके अलौकिक प्रभाव के कारण हम तीनों के तीनों ही नियमित रूप से तुम्हारे घर आया करेंगे।

शिवजी की बात सुन सुरथ ने हार्दिक प्रसन्नता और श्रद्धा के साथ शिवजी के साथ ब्रह्मा और विष्णु को प्रणाम किया, और उनके वरदान का बल ले उल्लास के साथ घर आए।

समयानुसार सुरथ की रानी गर्भवती हुई, और गर्भ के दिन पूरे होते ही उनकी कोख से एक परम सुन्दरी कन्या का जन्म हुआ। कन्या को देखते ही सुरथ की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। बड़ा भारी उत्सव उन्होंने

अपने राज्य में मनाया। आचार्य और उपरोहितों के साथ सभी नेगी जोगियों तथा दीन दुखियों को यथोचित दान-दक्षिणा दे, कन्या के मंगल के लिये सभी की शुभ कामनाओं का बल ग्रहण किया। कन्या भी सुरथ और उनकी रानी के घर घट में अपनी दीप्ति से आनन्दोल्लास की किरणें फैलाती दिन दिन बढ़ने लगी। जैसी-जैसी वह कन्या बढ़ती थी, वैसा ही वैसा सुरथ के मन में उसके लालन पालन का उल्लास भी बढ़ता चलता था। बस चलते एक क्षण के लिए भी वे उसे अपने से अलग न होने देना चाहते थे।

इस प्रकार माता पिता के स्नेह की सुख सुविधाओं में पलती बढ़ती जब वह राजकुमारी वयस्क हुई तब सुरथ को उसके व्याह की चिन्ता हुई। और वे अपना तन मन और धन सभी कुछ लगा उसके अनुरूप योग्य वर की तलाश म लग गए। पर विधाता को तो कुछ और ही करना था।

अनायास ही एक दिन वह कन्या कुछ अस्वस्थ हुई। यद्यपि वह साधारण सी ही अस्वस्थ थी, फिर भी सुरथ ने अपनी पूरी शक्ति लगा उसके स्वास्थ लाभ के प्रयत्न किये। पर उनके बड़े से बड़े उपचारों का भी कोई लाभ उसके गिरते स्वास्थ्य को न हुआ। रोग अपनी गति से दिन दिन बढ़ता ही गया इतना कि एक दिन वह कन्या अपनी अलौकिक प्रतिभा से सुरथ के घर को सूना कर अनन्त में विलीन हो गई।

कन्या के प्राण परोरू उड़ते ही सुरथ के ऊपर मानों पहाड़ टूटकर गिर पड़ा। वे निष्प्राण से होकर भी दुःख के आवेश मे किसी के हाथों में न समा कन्या के शव के ऊपर सिर पटक पटककर रो रहे थे। अपने तन बदन की भी सुध उन्हें न थी। सुरथ ही नहीं उनके सभी करता कामदार और गाँव के लोग उस कन्या की अलौकिक प्रतिभा और गुण कर्मों का स्मरण कर उसके इस प्रकार चले जाने से दुखी थे। पर किसी के रोने से क्या? सभी अपने सुख सुविधा और उल्लास के लिये रोते हैं। पर भगवान् को तो अपने निश्चित, निर्धारित कार्यक्रम से चलना पड़ता है। हम आप भले ही अपने हर्ष शोक म भूल जायं, पर वह है कि अपने क्रम म बाल भर भी फेर कभी कहीं नहीं आने देता। जब तक जिसका जिसके साथ संयोग होता है तभी तक वह उसके साथ रहता है और जैसे ही उसके संयोग की अवधि समाप्त होती है वैसे ही तेरे-मेरे की सारी मोह-माया छोड़ वह दूसरी जगह सम्बन्ध स्थापित करने चला जाता है। सारे

संसार की ही एक दिन वैसी ही गति होना है। यही समझते समझाते सुरथ के इस असामयिक संकट में संवेदना प्रकट करने आने वालों में से कुछ तो सुरथ को समझाने सम्हालने में लगे और कुछ कन्या के अन्तिम संस्कार की तैयारी करने में।

अन्तिम संस्कार की तैयारी पूरी होते ही कन्या की मृत देह को ठठरी पर रक्खा गया। जिसे देखते ही सुरथ धाड़ मारकर रोने लगे। पर अब किसी के रोने धोने से क्या होता है। अब तो कन्या की आत्मा किसी दूसरे ही लोक में अपनी प्रतिभा का प्रकाश फैला रही थी। उसका जो भौतिक स्वरूप यहाँ पड़ा था वह भी अब जा रहा था। मोहासक्त सुरथ भी उसकी इस महायात्रा में गिरते पड़ते उसके साथ चलने लगे।

श्मशान में पहुँचते ही चिता बनाई गई। लोक और वेद रीति के अनुसार आवश्यक संस्कार पूरे किये गए और फिर कन्या के मृत शरीर को चिता पर लिटा चन्दन की लकड़ियों से ढँक दिया गया। यहाँ तक कि इतनी क्रिया तो सुरथ किसी प्रकार छाती पर पत्थर रखकर देखते रहे पर जैसे ही चिता में प्रज्वलित अग्नि रक्खी जाने लगी, कन्या के मोह ने उनके रहे सहे धीरज को डिगा दिया। वे उन्मत्त पागलों की नाई बड़बड़ाते बड़बड़ाते चिता की ओर दौड़े और उसमें कूदने लगे। लोगों ने उन्हें सँभाला पर वे सँभाले सँभल नहीं रहे थे। उस एक के बिना सारा संसार उन्हें सूना लग रहा था। लोगों ने उन्हें एक बार सँभाला, दो बार सँभाला पर वे बार बार चिता में भस्म होने के लिए उधर ही भाग रहे थे।

लोगों द्वारा बार बार पकड़े जाने पर भी एक बार सुरथ लोगों की नजर बचा चिता में कूद ही पड़े, देखनेवाले भय विस्मित हो हाथ मलते देखते रह गए। तभी देखनेवालों ने आश्चर्य चकित होकर देखा कि चिता की धधकती बढ़ती लुहों में से कई हाथों ने एक साथ उन्हें ऊपर ले लिया। चिता की लपटों से बाहर आ सुरथ आँखें मलते एक ओर खड़े हो गये। उन्हें लग रहा था जैसे कोई दिव्य शक्ति उन्हें सम्बोधित कर रही हो—

उस दिव्य शक्ति को देखते ही सुरथ का दुख और उसके कारण हुआ क्षोभ और दूना हो गया, उसी के आवेश में आकर वे अपने वरदाताओं को और और जली कटी सुनाने लगे।

जब वे काफी सुना चुके, तब उन्हें लगा जैसे उनके वे वरदाता, ब्रह्मा, विष्णु और महेश साक्षात् उनके सम्मुख खड़े हो उनसे कह रहे हों—

सुरथ! यदि तुम तनिक शान्त और आश्वस्त होकर विचार करोगे तो हम लोगों के ऊपर किया जानेवाला तुम्हारा सारा रोष किसी दूसरी विपरीत दिशा में ही बदल जायगा और तब तुम निश्चय पूर्वक आज की अपेक्षा कहीं अधिक प्रसन्न होगे। मोहाशक्त होकर तुमने अपने और हमारे दोनों के ही किए का उलटा अर्थ लगा लिया है।

भगवान शिव न कृपा कर तुम्हें जो वर दिया था, वह आज भी अपनी जगह पर ज्यों का त्यों अचल और अक्षय है। अन्तर केवल समझ का है। अभी तक तुम्हें प्राप्त वर केवल भौतिक था। अब आज से वह दैहिक और भौतिक मिट कर दैविक होने जा रहा है। तुम जिसे उसका अवसान समझ रहे हो वह उनके नव-निर्माण या उसके विकास का उपक्रम है। अभी तक तुम उसके मोह में पड़कर उसे केवल अपने या अपने कहे





जानेवालों भर के लिए समझ रहे थे। तुम सोच ही नहीं रहे थे कि देवता का वरदान कोई एक भले ही प्राप्त कर पर उसका लाभ समष्टि के लिए

होता है। पाप का फल तो कर्ता को मिलता है। पर पुण्य का फल जब अपने-पराये सभी के हित में होता है तभी वह पुण्य-फल होता है।

आज से तुम्हारी साधना के फलस्वरूप तुम्हें प्राप्त वर केवल तुम्हारे विनोद के लिए न होकर लोक-कल्याण के लिए होनेवाला है। कान खोलकर सुन लो—जिस स्थान पर तुम्हारी कन्या का अन्तिम संस्कार हुआ है, वहाँ एक छोटा-सा पौधा होगा। जो आगे चलकर तुलसी के नाम से विख्यात होगा। उस तुलसी के पौधे पर लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति अविचल रूप से निवास करेंगी। जिनसे मिलने के लिए तुम्हारी कामना के अनुसार हम तीनों देवता नित्य, नियमित रूप से सन्ध्या समय आया करेंगे।

जो लोग अपने घरों में उस पौधे को लगा उसकी जड़ों में पानी देंगे, उसकी पूजा करेंगे और सन्ध्या समय उसके पास जलता दीपक रक्खेंगे, उनके घरों में उस पौधे पर रहनेवाली देवियों की पूजा और कृपा के प्रभाव से अक्षय सुख शान्ति की वृद्धि होगी। साथ ही जो लोग भिन्न भिन्न अनुपानों के साथ उसके पत्तों का प्रयोग करेंगे उनके शारीरिक और मानसिक कष्ट भी दूर होते रहेंगे। और तब इस प्रकार तुम्हारी साधना का सच्चा और स्थायी लाभ तुम्हें मिलेगा।

भगवान् के इस प्रकार कहते ही सुरथ के ज्ञान चक्षु खुले, और वे अपने देवताओं के चरणों में नत हो उनकी प्रार्थना करने लगे।

सुरथ की प्रार्थना पूरी होते ही गृहस्वामिनी ने उसे हृदयगम किया, और हरे-भरे तुलसी चौरे पर पहुँच श्रद्धा के साथ मस्तक टेककर कहा—

जगद्धात्रि नमस्तुभ्यं विष्णोश्च प्रिय वल्लभे,
यतो ब्रह्मादयो देवा सृष्टिस्थित्यंत कारिण।
नमस्तुलसि कल्याणि नमो विष्णुप्रिये शुभ,
नमो मोक्षप्रदे देवि नम सम्पत्प्रदायिके॥

सत्-संकल्प और लक्ष्मी

लक्ष्मी जी के यह बताने पर कि सत् ग्रन्थों का पठन पाठन भी उन्हें किसी स्थान पर अचल और अक्षय बना कर रखने का एक साधन है। वह उनकी कृपा पात्र गृह स्वामिनी नित्य नियमानुसार किसी न किसी धार्मिक, सांस्कृतिक या ऐतिहासिक ग्रन्थ का अध्ययन करती। और अपने इस ग्रन्थावलोकन कार्य में जो कथा स्थल उसे अधिक प्रेरक और प्रभावकारी प्रतीत होते उन्हें बार-बार मनन कर उनके सार को संजोकर अपन मन वचन और कर्म मे उतारने का प्रयत्न करती।

कितने ही सद् ग्रन्थों का अध्ययन करन के पश्चात् एक दिन वह कवि श्री कालिदास के रघुवंश नामक काव्य ग्रन्थ का पारायण, कर रही थी। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की कई पूर्व पीढ़ियों क वैभव का कौतूहल जनक और प्रेरक वर्णन इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक ग्रन्थ में है। इस ग्रन्थ के पारायण मे महाराज रघु और कौत्स ऋषि के परिसंवाद का एक प्रसंग उसे बहुत ही हृदय ग्राही प्रतीत हुआ। कई बार उसने उस कथा का मनन किया, इतना कि जब तक उसके एक-एक वाक्य का अर्थ उसके मन मे भली प्रकार रम नहीं गया वह उसे बार बार पढती और गुनती ही गई। उस पावन और कौतूहल जनक प्रसङ्ग की कथा के सार को उसने अपने मन में सदा सर्वदा के लिए इस प्रकार अंकित किया—

सूर्य वंश में महाराज रघु अपन समय के बहुत ही बड़े दानी और पौरुषी राजा हुए हैं। उनकी गुण गरिमा और बाहु बल की प्रशस्ति के कारण ही उनके वंश को सूर्य और इक्ष्वाकु वंश के साथ रघुवंश भी कहा जाने लगा है। उनकी वंश परम्परा की प्रतिष्ठा में दृढ़ता और चरित्र बल की कितनी ही सूक्तियाँ उनके नाम के साथ आज भी लोक व्यवहार में जहाँ-तहाँ कही सुनी जाती हैं। यथा—

रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाहिं पर बचन न जाई।
रघुबंशिन कर सहज सुभाऊ, मन कुपथ पग धरिय न काऊ।

इन्हीं ऐसे प्रभावशाली कर्मठ महाराज रघु ने एक बार इतना दान दिया कि दूर दूर तक उनके दान की प्रसिद्धि फैल गयी। पृथिवी के एक

छोर से दूसरे छोर तक के दानाभिलाषी उनके पास दान लेने की इच्छा से आने लगे। अपने यहाँ आप दान-पात्रों को दान देते-देते एक दिन ऐसा आ गया कि महाराज रघु के पास कुश के आसन और मिट्टी के पात्र ही शेष रह गए। फिर भी उनकी दानशीलता या उसकी प्रसिद्धि कम न हुई। नित्य एक न एक दानाभिलाषी उनके यहाँ आता ही रहा।

इन्हीं दिनों कौत्स नाम के एक ऋषि वरतन्तु ऋषि के पास विद्याध्ययन कर रहे थे। आवश्यक विद्याध्ययन सम्पन्न होने पर कौत्स ने अपने गुरुदेव की सेवा में पहुँच विनम्रता के साथ गुरुदक्षिणा के लिए निवेदन किया।

कौत्स की बात सुन वरतन्तु ने कहा—वत्स, तुम्हारी सत्य निष्ठा ही तुम्हारी गुरुदक्षिणा है। इसके अतिरिक्त और क्या तुमसे लूँ।

पर जब कौत्स ने बार-बार उनसे गुरुदक्षिणा माँगने का ही अनुरोध किया, तब वरतन्तु ने खीझ कर चौदह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ गुरुदक्षिणा के रूप में उनसे माँगी।

इतनी बड़ी राशि उनसे गुरु-दक्षिणा के रूप में माँगी जायगी, इसकी कल्पना भी कौत्स को सम्भवतः न थी। अस्तु, एक क्षण के लिए उनका विचार मग्न होना अस्वाभाविक न था। पर चूँकि वे महाराज रघु की दानशीलता की चर्चा सुन चुके थे, इसलिए दूसरे ही क्षण गुरु को प्रणाम कर रघु से गुरु दक्षिणा की राशि प्राप्त करने के लिए चल पड़े।

बड़ी ही आशा और विश्वास के साथ कौत्स महाराज रघु की राजधानी में पहुँचे। पर वहाँ पहुँचते ही उन्होंने रघु की दानशीलता के साथ उसके परिणाम की जो कथा सुनी तो उनकी व्यथा की सीमा न रही। जहाँ के तहाँ और जैसे के तैसे खड़े रह गए। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि वे अब कहाँ जायँ और क्या करें। और कोई दूसरा इतना बड़ा दानी सम्भवतः उन दिनों था नहीं, जिसके पास वे जाते। पर उन्होंने सोचा जब यहाँ तक आए हैं तब रघु से भेंट किए बिना जाना भी उचित न होगा। इसी विचार से वे उदास और हताश मुद्रा में दरबार में प्रविष्ट हुए।

रघु ने समुचित समादर करते हुए उन्हें आसन पर बैठा, उनके आने का कारण पूछा। कौत्स ने रघु के पूछने पर विषाद भरे स्वर में कहा—राजन् मेरे विद्या गुरु वरतन्तु ऋषि ने मेरे बार बार के आग्रह पर चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ गुरुदक्षिणा के रूप में मुझसे माँगी हैं। जिनकी प्राप्ति

के लिए आप की दानशीलता की चर्चा सुन कर मै आप क यहाँ तक आया था। बड़ी ही आशा मुझे आप से अपनी दक्षिणा की पूर्ति की थी। पर मेरा दुर्भाग्य कि मेरे यहाँ आने के पूर्व ही आप की स्थिति बदल गई और मेरी सारी आशाएँ धूल मे मिल गई। आप ही बताइए, अब मैं क्या करूँ, और क्या करूँ?

ऋषि की बात सुन रघु ने अपनी सहज स्वाभाविक दृढ़ता और विनम्रता के स्वर म कहा—ऋषिवर, आप अधीर या दु खी न हों शान्ति के साथ यहाँ विश्राम करें और मुझे इतना समय देने की कृपा करें कि एक दो दिन मे मैं आप की गुरु दक्षिणा चुकान का प्रयत्न कर सकूँ। मेरे लिए इससे बड़ी लज्जा, अपमान या पाप की बात और क्या होगी कि अतिथि देव क रूप में आप इस द्वार तक आकर निराश हो कहीं अन्यत्र जायँ। कौत्स से इतना कह रघु ने राज्य की अतिथि शाला मे उनके विश्राम और भोजनादि की व्यवस्था की। और आप उनकी दक्षिणा चुकाने का उपाय सोचने लगे।

सोचते सोचते रघु के ध्यान में आया कि और कहीं से तो इतनी जल्दी एक साथ चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ मिलना कष्ट साध्य ही नहीं असम्भव ही होगा। अस्तु, अच्छा यही होगा कि प्रात ही कुबेर के पास पहुँच उनसे यह द्रव्य प्राप्त किया जाय। बात क मन में बैठत ही रघु अपनी यात्रा की समुचित व्यवस्था कर रात में रथ मे ही सोए जिससे फिर प्रात उठने और यात्रा पर प्रस्थित होने मे विलम्ब न हो। रघु क मन में कौत्स की अपेक्षा कहीं अधिक चिन्ता उनकी गुरुदक्षिणा की पूर्ति की थी। धीर होते हुए भी इस चिन्ता मे उ हें शान्ति की निद्रा न आई। रह रह कर उसी क सोच में उलझते रहे। और जैसे ही प्रात मुर्गे ने बाग दी कि वे अपनी यात्रा पर जाने को प्रस्तुत हुए।

रघु अपनी यात्रा पर चलने के लिए रथ में बैठने ही वाले थे कि तभी राजकीय कोषागार क प्रहरी न आकर उन्हे प्रणाम कर निवेदन किया—

महाराज, आश्चर्य न करें, आज रात्रि मे कोषागार पर बड़े वेग की स्वर्ण वर्षा हुई है। सारा कोषागार सोन स चमक रहा है। लगता है जैसे समूचा सुमेरु पर्वत ही टुकड़े टुकड़े होकर कोषागार मे आ समाया हो।

रघु ने कुछ समय के लिए अपनी यात्रा स्थगित की और प्रहरी के साथ कोषागार देखने गए। कोषागार में पहुँच उन्होंने जो देखा उससे वे एक क्षण के लिए आश्चर्य चकित होकर रह गए। और फिर जैसे ही दूसरे क्षण आश्वस्त और समाहत हुए वैसे ही इस अश्रुत अलौकिक स्वर्ण वर्षा की घटना को केवल प्रभु की कृपा मान उनका विनम्र आभार माना। उसके पश्चात् अतिथिशाला में पहुँच कौत्स ऋषि को स्वर्ण-वृष्टि की सारी अघटित घटना सुना उन्हें कोषागार में ले जा वह सारी स्वर्ण राशि समर्पित कर ले जाने को कहा।

कौत्स ने साश्चर्य नेत्रों से राजकोष की यह अपार स्वर्णराशि देखी और, रघु की बात सुनी और विचार कर कहा—

महाराज, मुझे तो अपनी गुरुदक्षिणा चुकाने भर के लिए केवल चौदह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ चाहिए। अधिक से मुझे क्या ?

गाठी बन्धन वे करें जिनके देव न होंय।
आगे पीछे हरि खड़े जो माँगो सो देंय॥



कौत्स की १०

स्वर्ण वृष्टि हुई है वह केवल आप के कारण ही हुई है। मैं कैसे उस द्रव्य को राज कोष मे रखकर पाप का भागी बनूँ।

इस प्रकार दोनों अपनी-अपनी बात पर दृढ़ थे। कोई भी अपने सिद्धान्त से तिल भर पीछे हटने को तैयार न था।

इस प्रकार कुछ समय के लिए रघु और कौत्स का यह सैद्धान्तिक द्वन्द्व सभी के आकर्षण का विषय बन गया। एक क्षण के लिए सूर्यदेव भी अपने वंशधर की दान और धर्मशीलता का यह दृश्य देखने के लिए वहाँ रुक गए। और देवगण भी इस कौतूहल जनक दृश्य को देख रघु और ऋषि दोनों ही पर फूल बरसाने लगे। तभी सर्वसिद्धिदायिनी लक्ष्मी देवी ने वहाँ मूर्त रूप से प्रकट होकर कहा—

राजन्! तुमने अपनी शोचनीय स्थिति में भी अपना धैर्य और अपना साहस नहीं छोड़ा। इस असमय में भी तुमने अपने सारे पौरुष को सत्-सङ्कल्प की पूर्ति में लगाने का निश्चय किया यही तुम्हारी धर्म परायणता का प्रतीक है। जो व्यक्ति निस्वार्थ भाव से अपनी शक्तियों को दूसरों के उपकार या लोक-मंगल के पवित्र कार्मों मे लगाता है। वही अपने कर्त्तव्य और अपने आराध्य के सबसे निकट होता है। यह इतनी स्वर्ण राशि तो क्या सारे संसार की अक्षय श्री-सम्पदा, विजय और विभूति भी उसके लिए नगण्य और करतलगत है। अस्तु, ऋषि को इस स्वर्ण राशि के माया मोह में न डाल उनके लिए आवश्यक धन-राशि उन्हें भेंट कर, शेष को अपने राज कोष मे स्थान दो। और उससे समयानुसार निर्लिप्त और नि स्वार्थ भाव से लोक सेवा और लोक-रंजन के कार्य करते चलो। और सदैव ही ध्यान मे रक्खो—

सत्त न छोड़े सूरमा सत छोड़े पत जाय।
जो तू राखे सत्त तो पत पर घर क्यों जाय॥

लक्ष्मी जी की बात पूरी होते ही रघु ने अपने हृदय की समूची श्रद्धा-भक्ति को सहेज सर्व-मङ्गला लक्ष्मी देवी को प्रणाम कर उनकी वन्दना की।

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥
श्वेताम्बरधरे देवि नानालंकारभूषिते।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

रघु ने कुछ समय के लिए अपनी यात्रा स्थगित की और प्रहरी के साथ कोषागार देखने गए। कोषागार में पहुँच उन्होंने जो देखा उससे वे एक क्षण के लिए आश्चर्य चकित होकर रह गए। और फिर जैसे ही दूसरे क्षण आश्वस्त और समाहृत हुए वैसे ही इस अद्भुत अलौकिक स्वर्ण वर्षा की घटना को केवल प्रभु की कृपा मान उनका विनम्र आभार माना। उसके पश्चात् अतिथिशाला में पहुँच कौत्स ऋषि को स्वर्ण-वृष्टि की सारी अघटित घटना सुना उन्हें कोषागार में ले जा वह सारी स्वर्ण राशि समर्पित कर ले जाने को कहा।

कौत्स ने आश्चर्य नेत्रों से राजकोष की यह अपार स्वर्णराशि देखी और, रघु की बात सुनी और विचार कर कहा—

महाराज, मुझे तो अपनी गुरुदक्षिणा चुकाने भर के लिए केवल चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ चाहिए। अधिक से मुझे क्या ?

गाठी बन्धन वे करें जिनके देव न होंय।
आगे पीछे हरि खड़े जो माँगो सो देंय॥



कौत्स की बात सुन रघु ने कहा—महाराज राजकोष में आज जो

स्वर्ण-वृष्टि हुई है वह केवल आप के कारण ही हुई है। मैं कैसे उस द्रव्य को राज कोष में रखकर पाप का भागी बनूँ।

इस प्रकार दोनों अपनी-अपनी बात पर दृढ़ थे। कोई भी अपने सिद्धान्त से तिल भर पीछे हटने को तैयार न था।

इस प्रकार कुछ समय के लिए रघु और कौत्स का यह सैद्धान्तिक द्वन्द्व सभी के आकर्षण का विषय बन गया। एक क्षण के लिए सूर्यदेव भी अपने वंशधर की दान और धर्मशीलता का यह दृश्य देखने के लिए वहाँ रुक गए। और देवगण भी इस कौतूहल जनक दृश्य को देख रघु और ऋषि दोनों ही पर फूल बरसाने लगे। तभी सर्वसिद्धिदायिनी लक्ष्मी देवी ने वहाँ मूर्त रूप से प्रकट होकर कहा—

राजन्! तुमने अपनी शोचनीय स्थिति में भी अपना धैर्य और अपना साहस नहीं छोड़ा। इस असमय में भी तुमने अपने सारे पौरुष को सत्-सकल्प की पूर्ति में लगाने का निश्चय किया यही तुम्हारी धर्म परायणता का प्रतीक है। जो व्यक्ति निस्वार्थ भाव से अपनी शक्तियों को दूसरों के उपकार या लोक-मगल के पवित्र कामों मे लगाता है। वही अपने कर्त्तव्य और अपने आराध्य के सबसे निकट होता है। यह इतनी स्वर्ण राशि तो क्या सारे संसार की अक्षय श्री-सम्पदा, विजय और विभूति भी उसके लिए नगण्य और करतलगत है। अस्तु, ऋषि को इन स्वर्ण राशि के माया-मोह में न डाल उनके लिए आवश्यक धन-राशि उन्हें भेंट कर, शेष को अपने राज कोष में स्थान दो। और उससे समयानुसार निर्लिप्त और नि स्वार्थ भाव से लोक सेवा और लोक रंजन के कार्य करते चलो। और सदैव ही ध्यान में रखो—

सत्त न छोड़े सूरमा सत छोड़े पत जाय।
जो तैं राखै सत्त तो पत पर घर क्यों आय॥

लक्ष्मी जी की बात पूरी होते ही रघु ने अपने हृदय की समूची श्रद्धा-भक्ति को सहेज सर्व-मङ्गला लक्ष्मी देवी को प्रणाम कर उनकी वन्दना की।

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि।
परमशि जग मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु॥
श्वेताम्बरधरे देवि नानालंकारभूषिते।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तुते॥

रघु ने कुछ समय के लिए अपनी यात्रा स्थगित की और प्रहरी के साथ कोषागार देखने गए। कोषागार में पहुँच उन्होंने जो देखा उससे वे एक क्षण के लिए आश्चर्य चकित होकर रह गए। और फिर जैसे ही दूसरे क्षण आश्वस्त और समाहृत हुए वैसे ही इस अद्भुत अलौकिक स्वर्ण वर्षा की घटना को केवल प्रभु की कृपा मान उनका विनम्र आभार माना। उसके पश्चात् अतिथिशाला में पहुँच कौत्स ऋषि को स्वर्ण-वृष्टि की सारी अघटित घटना सुना उन्हें कोषागार में ले जा वह सारी स्वर्ण राशि समर्पित कर ले जाने को कहा।

कौत्स ने साश्चर्य नेत्रों से राजकोष की यह अपार स्वर्णराशि देखी और, रघु की बात सुनी और विचार कर कहा—

महाराज, मुझे तो अपनी गुरुदक्षिणा चुकाने भर के लिए केवल चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ चाहिए। अधिक से मुझे क्या?

गाठी बन्धन वे करें जिनके देव न होंय।
आगे पीछे हरि खड़े जो माँगो सो देंय॥



कौत्स की बात सुन रघु ने कहा—महाराज राजकोष में आज जो

स्वर्ण-वृष्टि हुई है वह केवल आप के कारण ही हुई है। मैं कैसे उस द्रव्य को राज कोष मे रखकर पाप का भागी बनूँ।

इस प्रकार दोनों अपनी-अपनी बात पर दृढ़ थे। कोई भी अपने सिद्धान्त से तिल भर पीछे हटने को तैयार न था।

इस प्रकार कुछ समय के लिए रघु और कौत्स का यह सैद्धान्तिक द्वन्द्व सभी के आकर्षण का विषय बन गया। एक क्षण के लिए सूर्यदेव भी अपने वंशधर की दान और धर्मशीलता का यह दृश्य देखने के लिए वहाँ रुक गए। और देवगण भी इस कौतूहल जनक दृश्य को देख रघु और ऋषि दोनों ही पर फूल बरसाने लगे। तभी सर्वसिद्धिदायिनी लक्ष्मी देवी ने वहाँ मूर्त रूप से प्रकट होकर कहा—

राजन्! तुमने अपनी शोचनीय स्थिति में भी अपना धैर्य और अपना साहस नहीं छोड़ा। इस असमय में भी तुमने अपने सारे पौरुष को सत्-सङ्कल्प की पूर्ति मे लगाने का निश्चय किया यही तुम्हारी धर्म परायणता का प्रतीक है। जो व्यक्ति निस्वार्थ भाव से अपनी शक्तियों को दूसरों के उपकार या लोक-मङ्गल के पवित्र कार्यों मे लगाता है। वही अपने कर्त्तव्य और अपने आराध्य के सबसे निकट होता है। यह इतनी स्वर्ण राशि तो क्या सारे संसार की अक्षय श्री-सम्पदा, विजय और विभूति भी उसके लिए नगण्य और करतलगत है। अस्तु, ऋषि को इस स्वर्ण राशि के माया मोह में न डाल उनके लिए आवश्यक धन-राशि उन्हें भेंट कर, शेष को अपने राज कोष में स्थान दो। और उससे समयानुसार निर्लिप्त और नि स्वार्थ भाव से लोक-सेवा और लोक रञ्जन के कार्य करते चलो। और सदैव ही ध्यान में रक्खो—

सत्त न छोड़े सूरमा सत्त छोड़े पत जाय।
जो तैं राखै सत्त तो पत पर घर क्यों जाय॥

लक्ष्मी जी की बात पूरी होते ही रघु ने अपने हृदय की समूची श्रद्धा-भक्ति को सहेज सर्व-मङ्गला लक्ष्मी देवी को प्रणाम कर उनकी वन्दना की।

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि।
परमेशि जग मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु॥
श्वेताम्बरधरे देवि नानालंकारभूषित।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तुत॥

उस जागरूक और परम श्रद्धालु गृहस्वामिनी ने इस कथानक को अपने हृदय पटल पर ऐसे अमिट अक्षरों मे अकित किया कि कैसी भी सम-विषम परिस्थितियों में किसी के भी मिटाए वे मिट न सकें। यही उसकी दृष्टि में उसके अध्ययन और मनन का श्रेय था।



अनाथ रक्षा और लक्ष्मी

पुरातन साहित्य एव संस्कृति के परिचायक सदर्भ ग्रन्थों का अनुशीलन करते समय एक दिन वह गृह-स्वामिनी स्कन्द पुराण का अध्ययन कर रही थी। एक कथा उसमें उसे मिली, जिसमें भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी जी के माध्यम से अपने एक परम श्रद्धालु भक्त के पौरुष एव अनाथ रक्षा की परीक्षा से अपना दिव्य सन्देश उसे दिया है। मननशील पाठक को कथा का वह प्रसंग हृदय-ग्राही और प्रेरक प्रतीत हुआ। अस्तु उसने उसे अपनी उस स्मरण पुस्तिका में लिख लिया, जिसमे वह ऐसे लोक शिक्षक एव लोक रजक प्रसग लिख लेती थी। उसकी सस्मरण पुस्तिका का वह लेख इस प्रकार है—

बात प्राचीन काल की है। मथुरापुरी में पुण्य निधि नाम के एक राजा राज्य करते थे। एक बार वे अपने पुत्र को राज्य सौंप तीर्थ यात्रा करने गए। राम सेतु तीर्थ पर पहुँच पुण्यनिधि ने सत्सकल्पों के साथ स्नान दान, भजन-पूजनादि किए और फिर निष्ठापूर्वक विष्णु यज्ञ सम्पन्न किया। यज्ञ की निर्विघ्न पूर्णता के पश्चात् वे वहाँ के अन्य पुण्य-स्थलों की तीर्थ यात्रा का पुण्य-संचय करने लगे।

एक दिन पुण्य-निधि धनुष कोटि तीर्थ पर स्नान करने पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक परम सुन्दरी कन्या निपट अकेली, उन्मत्त की नाई इधर-उधर भ्रम भटक रही है। पुण्य निधि ने करुणा और कौतूहल वश उस कन्या को देखा और उसके पास जाकर पूछा—बेटी, तुम कौन हो, और यहाँ इस प्रकार अकेली कैसी भटक रही हो।

कन्या ने करुणा भरे स्वर में कहा—देव, मैं एक अनाथ निराश्रित कन्या हूँ। माता पिता अथवा भाई बहिन कोई भी मेरा अपना कहा जाने वाला ऐसा नहीं है जिस पर कुछ प्रत्यय कर सकूँ। आपका अत्यन्त

अनुगृह होगा यदि आप शिक्षा-दीक्षा वा सुरक्षा का वचन दे मेरा पोषण कर सकें। मैं पुत्री के रूप में आपके यहाँ रहना चाहती हूँ।

कन्या की बात सुन पुण्यनिधि ने उल्लासपूर्वक कहा, बेटा — मुझे यह जानकर बड़ी प्रसनता है कि तुम पुत्री के रूप मे मेरे यहाँ रहना चाहती हो। मेरे यहाँ एक पुत्र के अतिरिक्त और कोई सन्तान नहीं है। अच्छा होगा कि तुम दोनों भाई बहिन के रूप में प्रेमपूर्वक मिलकर रहो। मैं अपने समस्त सत्य-सुकृतों को साक्षी बना वचन देता हूँ कि तुम्हारी समुचित शिक्षा दीक्षा एवं पोषण का ध्यान तो रक्खूँगा ही पर साथ ही तुम्हारी सुरक्षा का भी पूरा-पूरा ध्याल रक्खूँगा। यदि कोई तुम्हारा अमंगल चाहेगा अथवा तुम्हारी ओर किसी प्रकार की भी दुर्भावना से अंगुलि निर्देश करेगा तो उसकी बड़ी से बड़ी शक्ति वा सीमा का ध्यान किए बिना ही मैं बड़े से बड़ा दण्ड उसे दूँगा और जब तुम वयस्क हो जाओगी तब तुम्हारी इच्छानुसार तुम्हारा पाणिग्रहण संस्कार कर दूँगा।

राजा के इतना कहते ही वह कन्या प्रसन्न मन से पुण्यनिधि के साथ चल पड़ी। घर पहुँच पुण्यनिधि ने रानी विन्ध्यावली से कहा—प्रिये, अब तक अपने यहाँ कोई कन्यारत्न न होने से प्रभु ने तीर्थ के प्रसाद के रूप में यह कन्या हमें प्रदान की है। इसके कन्यादान से अपने सांस्कृतिक दायित्व की पूर्णता होगी। लो अब यह तुम्हारे हाथ मे है।

राजा की बात सुनते ही रानी विन्ध्यावली ने कन्या को प्रसन्नता के साथ अपनी उल्लसित छाती से लगाया और कहा—चलो बेटा, मन की सारी उन्मनता वा अन्यमनस्कता दूर कर प्रसन्नता के साथ यहाँ रहो। कभी भूलकर भी यह बात अपने मन में न लाना कि तुम किसी पराए घर में हो। जब भी जो असुविधा वा आवश्यकता तुम्हे हो निःसकोच भाव से बताना।

इस प्रकार सभी सुख सुविधाओं के साथ वह कन्या पुण्य निधि के राजमहल में रहने लगी। एक दिन वह कन्या अपनी सहेलियों के साथ महल की वाटिका में विचर रही थी। तभी किसी अनजान व्यक्ति ने वहाँ आ बलपूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया। अपरिचित व्यक्ति द्वारा इस प्रकार हाथ पकड़ते ही वह कन्या और उसकी सहेलियाँ भय-भीत हो चिल्लाने लगीं। भयातुर लड़कियों की चिल्लाहट सुनते ही इधर

तो पुण्यनिधि चिन्तातुर हो उनकी सहायतार्थ भागे, और इधर वह अनाचारी अपने प्राण बचाने के लिए वहीं झुरमुट में छिप गया।

पुण्यनिधि हाँफते काँपते वहाँ पहुँचे और उन सुकुमारियों से इस प्रकार चिल्लाने का कारण पूछा।

पुण्यनिधि के वहाँ पहुँचते ही लड़कियों ने सन्तोष की साँस ली, और पुण्यनिधि को उस सारी अघटित घटना से परिचित कराया। लड़कियों की बात सुनते ही पुण्यनिधि के अन्तस् में बैठा पौरुष रूपी सिंह जैसे सोते से जाग पड़ा। लड़कियों के साथ किए गए इस अभद्र और असांस्कृतिक व्यवहार से उनके मन को बड़ी चोट पहुँची। उनका चेहरा तमतमा कर लाल हो गया। लड़कियों को आश्वस्त कर वे किसी साथी या सिपाही के बिना अकेले ही उस अपोढ्यी नरपिशाच को पकड़ने झपटे। चरित्र भ्रष्ट चोर में हिम्मत ही कितनी होती है, पुण्यनिधि के थोड़े ही प्रयत्न से वह उनकी पकड़ में आ गया। अपराधी के पकड़ में आते ही उन्होंने कसकर उसकी मुश्कें बाँधी और सिपाहियों के आते ही उसे बन्दी बना जेल भिजवा दिया। और उन लड़कियों को यथा-स्थान भिजवा आप अपने छोड़े हुए काम में जा लगे। पर इस घटना का ऐसा प्रभाव उनके मन पर पड़ा कि प्रयत्न करके भी वे फिर अपना काम न कर सके। और उद्विग्नता में अपनी मनः शान्ति के लिए भगवदाराधन में लगे। जहाँ उनके मन में इसी एक बात का संतोष आया कि आज उन्होंने एक कामुक नराधम व्यक्ति को पकड़ अपने कर्त्तव्य का पालन किया। पर इसी के साथ वे इस बात से दुखी भी थे कि अपने इस सांस्कृतिक अपराध के लिए एक अकेला वही दोषी नहीं है। सारा समाज उसका अपराधी है। अपने आप को भी वे उससे बचा नहीं पाते थे। इन्हीं उलझनों भरे मन से वे उस रात कुछ खाए पिए बिना ही पलंग पर जा लेटे। पर उन्हें नींद नहीं आ रही थी। ज्यों-त्यों कर निद्रा या तन्द्रा का एक झोंका आया भी, पर उसमें वे और ही दूसरा स्वप्न देखने लगे।

निद्रा या तन्द्रा का झोंका आते ही पुण्यनिधि लहराते क्षीरसागर में पहुँचे, वहाँ उन्होंने देखा कि शेष शैया पर भगवान विष्णु के स्थान पर वही नराधम सोया है, जिसे आज उन्होंने अपने महल के बाग में अपनी राज कन्या का हाथ पकड़ने के अपराध में बन्दी बनाया है। और वहीं

लक्ष्मी जी के रूप में जो देवी सुखासीन हैं, वह भी लक्ष्मी जी न होकर उनकी वह राज्य कन्या ही है। इस स्वप्न को देखते ही पुण्यनिधि की निद्रा या तन्द्रा जो भी समझिए एक क्षण में ही भंग हो गई। वे आँखें मलते हुए वहाँ पहुँचे जहाँ उन्होंने अपने द्वारा पकड़े उस अपराधी को बन्दी बना रक्खा था। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि बन्दीगृह में उस के रूप में जो व्यक्ति वहाँ पड़ा है वह और कोई न होकर साक्षात भगवान विष्णु ही हैं। वहाँ से भाग कर पुण्यनिधि राजमहल में पहुँचे, और वहाँ जाकर देखा कि राज कन्या के स्थान पर वहाँ स्वयं जगन्माता लक्ष्मी सो रही हैं।



अपनी स्वप्न और जागृत अवस्था में देखे गए इन दृश्यों को देख पुण्यनिधि के भय विस्मय भरे कौतूहल का ठिकाना न रहा। भय कातर हो उन्होंने फिर अपने नेत्र बन्द किए और फिर देखा कि क्षीरसागर में शेष नाग की कुण्डली पर उनका वह बन्दी और वह कन्या विराजमान हैं। दूसरी बार भी फिर यही दृश्य देखते ही पुण्यनिधि फिर अपने बन्दीगृह और कन्या के शयन कक्ष में गए और वहाँ फिर पहिले की ही

भाँति शख, चक्र, गदा पद्म धारी विष्णु और कमलासना लक्ष्मी जी की अप्रतिम प्रतिमा के दर्शन किए।

दूसरी बार भी उन्हीं दृश्यों को देख पुण्यनिधि भौचक्के होकर रह गए। वे प्रयत्न करके भी नहीं सोच पा रहे थे कि यह सब रहस्य क्या है? अपनी इस दयनीय स्थिति मे पुण्यनिधि भगवान के सामने घुटने टेक अपनी आत्म-शान्ति के लिए गद् गद् स्वरों मे प्रार्थना करने लगे। पुण्य निधि आँखें बन्द कर प्रार्थना मे लीन हो बैठे ही थे कि उन्हे अपनी आँखों के सामने एक दिव्यालोक फैला दिखाई दिया। जिसके भली प्रकार फैलने ही भगवान् विष्णु और जगन्माता लक्ष्मी को अपने सम्मुख उपस्थित पाया।

भगवान विष्णु और लक्ष्मी वहाँ आकर खड़े ही नहीं हो गए वरन् वे पुण्यनिधि को सम्बोधित करते कहने लगे—

पुण्यनिधि, अपने हृदय की विह्वलता शान्त करो, और आश्वस्त होकर अपनी आँखें खोल इधर हमारी ओर देखो। जिस कन्या को तुमने अपनी कन्या के रूप मे स्वीकार किया है, वह कोई मानवी नहीं साक्षात् लक्ष्मी जी ही हैं। और जिस व्यक्ति को अपने अपराधी के रूप मे तुमने बन्दी बनाया है वह और कोई नहीं स्वयं मैं विष्णु ही हूँ। तुम्हारे पौरुष, अनाथ सेवा और स्त्री तथा धर्म के रक्षण में तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए मैंने अपने नियम के अनुसार अपनी यह लीला की थी। जिसमें तुम पूर्णत खरे उतरे, अब शान्त और स्वस्थ होकर अपना कार्य करो। तुम्हारी परीक्षा की इस सफलता के प्रतिफल स्वरूप आज से देवी लक्ष्मी तुम्हारी कन्या के रूप मे ही तुम्हारे यहाँ रहेंगी। तुम्हारे यहाँ तो वह रहेंगी ही पर उसी के साथ तुम यह भी निश्चित समझो कि जहाँ भी लोग दीन, अनाथ और स्त्रियों की सम्मान रक्षा एव उनकी सेवा सम्भाल में निस्वार्थ भाव से अपने पौरुष का प्रयोग करेंगे वहाँ भी वे अक्षय और अचल होकर निवास करेंगी। और फिर जहाँ लक्ष्मी होंगी वहाँ सभी प्रकार का सुख, शान्ति और सम्पन्नता की वृद्धि होगी।

भगवान के श्री मुख से इतना सुनते ही पुण्यनिधि ने अपने पुलकित नेत्रों से विश्व पालक भगवान विष्णु और जगन्माता लक्ष्मी के दर्शन कर अपने को धन्य मान गद् गद् स्वरों मे उनकी प्रार्थना की।

पुण्यनिधि की प्रार्थना और इस कथा प्रसग के नीचे उस गृह स्वा-
मी ने अपने सान्स्कृतिक आचार्यों के शब्दों मे भगवान विष्णु की यह
ातन प्रार्थना अंकित करते हुए अपनी निज की श्रद्धा के रूप में यह
अंकित कर दिया भगवान जैसी इनकी निभाई वैसी ही अपने सभी
द्धालु-अश्रद्धालु खरे खोटे पुत्रों की भी निभाना बनाना। इतना लिख
र उसने कहा—

श्रेय सदा दिशतु सालस पक्ष्मपङ्क्ति
निद्रायित अपि दृशो भृशमुन्नमय्य।
संवाह्यमानचरणाम्बुज जातहर्षो,
लक्ष्मीमुखेक्षणपर परमेश्वरी व॥

लक्ष्मी और सुमति-सदाचार

सर्व-मगला लक्ष्मी को प्रसन्नवदन देख गृहस्वामिनी ने श्रद्धा पूर्वक अभिवन्दन कर पूछा—देवि आप ने यह तो बताया कि जहाँ मदिरा, वेश्या और जुआ होते हैं, वहाँ मैं नहीं रहती हूँ। किन्तु क्या इनके अतिरिक्त और भी कोई कारण ऐसे होते हैं, जिन्हें देखकर आसानी से समझा जा सके कि आप कहाँ हैं और कहाँ नहीं?

गृहस्वामिनी की विनम्रता भरी जिज्ञासा देख लक्ष्मी ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—बहू! कह नहीं सकती कितनी बार और कितने स्थानों पर मुझे अपने रहने न रहने के कार्य कारण बताने पड़े हैं। फिर भी देखती हूँ कि संसार अपनी भुलक्कड़ प्रकृति और माया मोह में पड़कर उसे भुला देता है। और मुझे फिर किसी नए स्थान पर आते जाते उन-कार्य-कारणों की विस्तृत व्याख्या करनी पड़ती है। और तो और एक बार मुझे स्वयं भगवान् विष्णु को जिनके निकट मैं अपने जन्म से ही अचपल होकर मूर्त रूप में रहती हूँ बताना पड़ा था—

यत्राभ्यागत दान-मान चरण-प्रक्षालनं भोजनं
सत्सेवा पितृदेवतार्चनविधि सत्यं गवा पालनम्।
धान्यानामपि यत्र नास्तिकलहश्चित्तानुरूपा प्रिया
दृष्टा प्राह हरिं वसामि कमला तस्मिन् गृहे निश्चला॥

जहाँ दान मान के साथ अतिथियों और सन्तों को भोजन तथा देवता और पितरों का पूजन अर्चन होता है। सत्य और गौ का पालन होता है और आवश्यक धान्यों का संग्रह जहाँ होता है। जिन घरों की महिलाएँ पति के अनुकूल आचरण करनेवाली होती हैं तथा पारस्परिक कलह का अभाव जहाँ होता है वहाँ मैं अक्षय और अचल होकर रहती हूँ।

इतना कहने के पश्चात् लक्ष्मी देवी ने अपने रहने न रहने के सम्बन्ध की पारस्परिक सुमति की एक पुरानी किम्वदन्ती कहते हुए कहा—

बहुत दिनों की बात है धारा नगरी में एक सेठ रहते थे। धन-जन सभी से भरा पूरा परिवार उनका था। सभी प्रकार की सुख सुविधाएँ उन्हें सहज सुलभ थीं। कई पीढ़ियों से उनके परिवार में अचचल होकर मैं रह रही थी। एक बार अपने अवतरण के दिन से एक दिन पहले मैं ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—

बेटा, मुझे तुम्हारे परिवार में रहते रहते कितनी ही पीढ़ियाँ हो चुकी हैं, अब अपने स्वभाव के अनुसार मुझे यहीं अन्यत्र जाना चाहिए। किन्तु बहुत समय से तुम्हारे यहाँ रहने के कारण इस घर से कुछ मोह सा हो गया है, इसलिए जाने से पहले तुम्हें जता बता रही हूँ कि मैं अब चली जाऊँगी चलती वेला में तुम्हें जो माँगना हो सो माँग ले।

मेरी बात सुन सेठ विचारा गुम सुम मौन खड़ा होकर रह गया। कुछ भी कहते उससे न बन रहा था। तब मैंने उसे धीरज देते हुए कहा, इस प्रकार दुखी और अधीर होने की कोई बात नहीं है। यदि तू इस समय जल्दी में कुछ नहीं सोच पा रहा है तो आज नहीं कल स्वयं सोच कर या अपने घर वालों से सलाह कर जो तुझे और तेरे घर वालों को रुचे सो माँग लेना।

अपने उस भक्त से इतना कह कर मैं तो अन्तर्धान हो गई और उस सेठ ने अपने बहू बेटों और नाती-पोतों को बुला एक जगह बैठा कर मेरी बात सुनाई और फिर सब का मत जानना चाहा कि क्या माँगना चाहिए।

सेठ की बात सुन सभी ने अपने-अपने मन और मत के अनुसार सुझाव उसे दिए। किसी ने अपार धन दौलत माँगने को कहा और किसी ने बुद्धि-वैभव तो किसी ने जगह-जमीन माँगने की बात बताई। और

वहीं स्त्री ने अपने परिवार के सुन्दर स्वास्थ्य और स्वरूप की कामना करने को कहा। सेठ की एक छोटी बहू भी थी। जो सबसे पीछे चुप-चाप घूँघट में मुँह ढाँपे दूर बैठी थी। उसका मत भी सेठ ने जानना चाहा।



बहू ने सास के माध्यम से सेठ को अपना मत बताते हुए कहा—दद्दा, मेरी समझ में लक्ष्मीजी से और कुछ न माँग केवल अपने परिवार में सुमति और सद्भाव की ही कामना की जाय।

बहू की बात सुन सेठ ने मन ही मन थोड़ा विचार किया और कहा, ठीक है बेटा, तेरी ही बात ठीक है—अगर घर में सुमत होगा तो क्या सुख क्या दुःख सभी को किसी प्रकार आपस में हँस खेल काट ही लेंगे।

बहू की बात पर सेठ की मुहर लगने ही सबने अपनी स्वीकृति दी। और फिर जैसे ही दूसरे दिन में फिर सेठ से मिली तब मेरे पूछने पर उसने हाथ जोड़कर कहा मैया अब अगर आप को जाना ही है तो क्या मैं और क्या कोई और कह ही क्या सकते हैं। इतने दिन सुख-सन्तोष देकर आप यहाँ रहीं यही आपकी कृपा है। और अब अगर जाना ही है तो जाते समय यही एक वरदान देने की कृपा करें कि आपके अनुग्रह से भर-पूर और फले-फूले इस घर में हर्ष या शोक कैसा भी समय असमय

जहाँ दान मान के साथ अतिथियों और सन्तों को भोजन तथा देवता और पितरों का पूजन अर्चन होता है। सत्य और गौ का पालन होता है और आवश्यक धान्यों का संग्रह जहाँ होता है। जिन घरों की महिलाएँ पति के अनुकूल आचरण करनेवाली होती हैं तथा पारस्परिक कलह का अभाव जहाँ होता है वहाँ मैं अक्षय और अचल होकर रहती हूँ।

इतना कहने के पश्चात् लक्ष्मी देवी ने अपने रहने न रहने के सम्बन्ध की पारस्परिक सुमति की एक पुरानी किम्वदन्ती कहते हुए कहा—

बहुत दिनों की बात है धारा नगरी में एक सेठ रहते थे। धन-जन सभी से भरा पूरा परिवार उनका था। सभी प्रकार की सुख सुविधाएँ उन्हें सहज सुलभ थीं। कई पीढ़ियों से उनके परिवार में अचचल होकर मैं रह रही थी। एक बार अपने अवतरण के दिन से एक दिन पहले मैं ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—

बेटा, मुझे तुम्हारे परिवार में रहते रहते कितनी ही पीढ़ियाँ हो चुकी हैं, अब अपने स्वभाव के अनुसार मुझे कहीं अन्यत्र जाना चाहिए। किन्तु बहुत समय से तुम्हारे यहाँ रहने के कारण इस घर से कुछ मोह सा हो गया है, इसलिए जाने से पहले तुझे जता बता रही हूँ कि मैं अब चली जाऊँगी चलती बेला में तुझे जो माँगना हो सो माँग ले।

मेरी बात सुन सेठ बिचारा गुम-सुम मौन खड़ा होकर रह गया। कुछ भी कहते उससे न बन रहा था। तब मैंने उसे धीरज देते हुए कहा, इस प्रकार दुखी और अधीर होने की कोई बात नहीं है। यदि तू इस समय जल्दी में कुछ नहीं सोच पा रहा है तो आज नहीं कल स्वयं सोच कर वा अपने घर वालों से सलाह कर जो तुझे और तेरे घर वालों को रुचे सो माँग लेना।

अपने उस भक्त से इतना कह कर मैं तो अन्तर्धान हो गई और उस सेठ ने अपने बहू बेटों और नाती-पोतों को बुला एक जगह बैठा कर मेरी बात सुनाई और फिर सब का मत जानना चाहा कि क्या माँगना चाहिए।

सेठ की बात सुन सभी ने अपने-अपने मन और मत के अनुसार सुझाव उसे दिए। किसी ने अपार धन दौलत माँगने को कहा और किसी ने बुद्धि-वैभव तो किसी ने जगह-जमीन माँगने की बात बताई। और

वहीं किसी ने अपने परिवार के सुन्दर स्वास्थ्य और स्वरूप की कामना करने को कहा। सेठ की एक छोटी बहू भी थी। जो सबसे पीछे चुप-चाप घूँघट में मुँह ढाँके दूर बैठी थी। उसका मत भी सेठ ने जानना चाहा।



बहू ने सास के माध्यम से सेठ को अपना मत बताते हुए कहा—दादा, मेरी समझ में लक्ष्मीजी से और कुछ न माँग केवल अपने परिवार में सुमति और सद्भाव की ही कामना की जाय।

बहू की बात सुन सेठ ने मन ही मन थोड़ा विचार किया और कहा, ठीक है बेटा, तेरी बात ठीक है—अगर घर में सुमत होगा तो क्या सुख क्या दुःख सभी को किसी प्रकार आपस में हँस खेल काट ही लेंगे।

बहू की बात पर सेठ की मुहर लगते ही सबने अपनी स्वीकृति दी। और फिर जैसे ही दूसरे दिन मैं फिर सेठ से मिली तब मेरे पूछने पर उस ने हाथ जोड़कर कहा मैया अब अगर आप को जाना ही है तो क्या मैं और क्या कोई और कह ही क्या सकते हैं। इतने दिन सुख-सन्तोष देकर आप यहाँ रहीं यही आपकी कृपा है। और अब अगर जाना ही है तो जाते समय यही एक वरदान देने की कृपा करें कि आपके अनुग्रह से भर-पूर और फले-फूले इस घर में हर्ष या शोक कैसा भी समय असमय

पड़े पर इस परिवार के छोटे-बड़े किसी भी स्त्री पुरुष में पारस्परिक ईर्ष्या वा कलह कलुष का नाम न हो।

सेठ की बात सुन मुझे वैसे ही मौन निरुत्तर खड़ा रह जाना पड़ा जैसे पहिले दिन मेरी बात पर वह सेठ रह गया था। इसके पश्चात् मैंने फिर उसकी पीठ पर अपना हाथ फेरा और कहा—

बेटा तुमने अपने विवेक से अप्रत्यक्ष रूप में मेरी चञ्चल गति को अचञ्चल बना दिया है। अब मैं तुम्हारे घर रहूँ वा जाऊँ कोई प्रभाव उस का नहीं होता। जब तक किसी परिवार में सुमति-सौहार्द्र रहता है, तब तक कोई भी उस घर परिवार की सुख समृद्धि मिटा नहीं सकता।

अपने घर में प्रतिष्ठित पद्मासना लक्ष्मी के श्रीमुख से 'जहाँ सुमति तँह सम्पति नाना' का यह पावन सन्देश सुन भावुक किसान पत्नी ने श्रद्धा के साथ उनके चरणों पर अपना माथा टेक हाथ जोड़ फिर उसी भाव से पूछा—देवि क्या और भी कोई प्रसग ऐसा है जिससे हमें आपके सम्बन्ध की कुछ सीख मिल सके।

इससे आगे विष्णुप्रिया लक्ष्मी ने अपने मृदुहास्य की दीप्ति बिखेरते हुए कहा,—हाँ, एक बार कृष्ण प्रिया रुक्मिणी देवी ने भी ऐसा ही प्रश्न किया था तब मैंने उन्हें ब्योरेवार बताया था कि मैं किन आचरणों के स्त्री पुरुषों के निकट अपनी सहज स्वाभाविक गति से रहती हूँ और कैसों के पास नहीं। महर्षि व्यास ने मेरे और रुक्मिणी देवी के उस पावन प्रसग को युग युग की सन्ततियों के ज्ञान-वर्धन के हेतु अपने महाभारत नामक ग्रन्थ के अनुशासन पर्व में उल्लिखित कर दिया है। जहाँ से उसका विधिवत् अध्ययन कर सदा सर्वदा के लिए हृदयंगम किया जा सकता है। इसके साथ और भी कितने ही प्रेरक प्रसंग उसमें ऐसे मिलेंगे जिनके मनन से पाठक अपने को सुसंस्कृत और सुखी बना सकता है।

लक्ष्मी के इतना कह मौन होते ही किसान वधू ने श्रद्धा के साथ—

हिरण्यवर्णां हरिणीम् सुवर्ण रजतस्रजाम,
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्,
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥

इन वेद विहित स्वरों में लक्ष्मी जी का वन्दन किया। और अपने पति से कल ही महाभारत की प्रति लाने को कहा। और फिर जैसे

ही दूसरे दिन घर में महाभारत की प्रति आ गई तब श्रद्धा और विश्वास के साथ ग्रन्थ पूजन कर उसमे से रुक्मिणी-लक्ष्मी प्रसग निकाल पढना प्रारम्भ किया।

धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्ध भूमि में शर शैया पर लेटे पितामह भीष्म की श्रद्धापूर्वक अर्चना कर विनय पूर्वक पूछा—

दादा, केवल मनुष्य ही नहीं देव, दानव, यक्ष गन्धर्व और किन्नर सभी सर्वसिद्धि दायिनी लक्ष्मी को पाने और अपने यहाँ अक्षय और अचल बनाकर रखने के लिए लालायित और प्रयत्नशील रहते हैं। सभी सम्भव और असम्भव उपाय भी उनके लिए किए जाते हैं। फिर भी कहा जाता है कि चंचला लक्ष्मी कहीं भी अचचल होकर नहीं रहती हैं। समिष्टि का बड़ा हित होगा यदि इस सम्बन्ध में थोड़ा प्रकाश डालने की कृपा करें।

धर्मराज की बात सुन पितामह ने कहा—इस सम्बन्ध में मैं अपनी ओर से कुछ न कह एक पुरातन प्रसग जो मैंने अपने गुरुजनों से सुन रक्खा है, सुनाता हूँ, आशा है उससे तुम्हारी जिज्ञासा की पूर्ति हो सकेगी।

एक समय की बात है, योगेश्वर भगवान कृष्ण रुक्मिणी देवी और लक्ष्मी जी के साथ बैठे पारस्परिक चर्चा कर रहे थे तभी रुक्मिणी देवीने श्रद्धा के साथ लक्ष्मी जी से कहा,—देवि, यदि अपराध न हो तो मेरी बड़ी लालसा आपके श्री मुख से यह जानने की है कि आप ससार में कैसे लोगों और स्थानों में रहती हैं और कैसों मे नहीं।

देवी रुक्मिणी की बात सुन लक्ष्मी जी ने कहा—भद्रे, प्रसन्नता की बात है कि आज तुम ने यह प्रश्न छेड़ा। इससे वे व्यक्ति भी जो मुझे चचला कह कर लाछित किया करते हैं सहज ही यह जान सकेंगे कि मैं कहाँ और कैसे स्थानों में रहती हूँ और कहाँ नहीं। अपनी बात को चालू रखते हुए पद्मासना ने आगे कहा—अच्छा होगा कि अपने रहने के सासारिक स्थान बताने के पूर्व यह स्पष्ट कर दूँ कि मैं मूल-रूप से केवल भगवान विष्णु के निकट ही स्थायी होकर रहती हूँ, कारण कि वहाँ क्या राजा क्या रक सभी की पहुँच है। सभी के प्रति समता-ममता का व्यवहार वहाँ है। अद्वेष और अक्रोध भाव से सभी के सुहित और सुमंगल की कामना और समान रूप से सभी का विधिवत पोषण वहाँ होता है। किसी ओर के दोष या कसूर न देख वे केवल अपने निज पोषण के कर्तव्य कर्म का ही ध्यान रखते हैं। यही कारण है कि मेरे समुद्र से

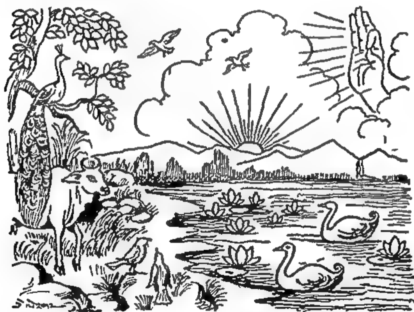
निकलने पर जब कि दूसरे और कितने ही देव दानव मेरी ओर आशा भरी दृष्टि से देखने में लगे थे, तभी भगवान नारायण अचचल भाव से अपने विश्व पालन के कर्तव्य कर्म में लगे थे, सम्भवतः मेरी ओर उनका ध्यान भी न हो। अपने धर्म में उनकी ऐसी अडिग निष्ठा देख कर ही मैंने अनगिनते देव दानवों के बीच उनका वरण किया था। उनके इन्हीं गुणों के कारण मैं तब से अब तक मूर्त रूप में उनके निकट रहती हूँ। और यदि उनके लीला विलास के लिए कहीं जाती भी हूँ तो उनके इन्हीं सुकर्मों की पूर्ति के लिए उनके इन्हीं गुणों और इन्हीं कर्मों वाले स्थानों में ही जाती रहती हूँ। मैं कहाँ और कैसे स्थानों और मनुष्यों में जाती रहती हूँ। उसका विस्तृत परिचय इस प्रकार है—

विख्यात है कि—'उद्योगिनम् पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मी' अर्थात् 'पुरुष सिंह जो उद्यमी लक्ष्मी ताकी चेरि' अस्तु मैं सबसे पहिले उनके घरों में रहती हूँ जो अकर्मण्य, आलसी और अनुद्योगी नहीं हैं। जिन्हें अपने श्रम और बाहुबल पर विश्वास है। जो प्रतिभावान और पुरुषार्थी हैं। जो अपने सद्‌विवेक द्वारा प्रारम्भ किए कार्य को पूरा करके ही चैन लेते हैं। विघ्न बाधाओं या संकटों और असफलताओं के भय से बीच में ही उसे नहीं छोड़ बैठते हैं। "कार्यम् साधयामि वा शरीरम् पातयामि वा" का आदर्श ही जिनका सिद्धान्त होता है। दूसरों के किए हुए उपकारों को स्वयं तो कभी भूलते ही नहीं हैं वरन अवसर आने पर दूसरे और सिद्धान्तहीन स्वार्थी जनों को भी पृथिवी की वेदना बताते हुए कहते हैं—

सात द्वीप नव खण्ड अरु मन्दर मेरु पहार।
शेषहिं इतो न भार है जितो कृतघ्नी भार॥

इसी प्रकार मैं उनके यहाँ भी अचल और अक्षय होकर निवास करती हूँ जो दूसरों के धर्म की निन्दा किए बिना अपने धर्म कर्म पर निष्ठा और विश्वास करते हैं। 'परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा, पर निन्दा सम अघ न गिरिसा'-के पावन सिद्धान्त को मान जो किसी पर भी ईर्ष्या-द्वेष क्रोध या घृणा नहीं करते। बड़े-बूढ़े गुरु जनों और अतिथियों के सेवा समादर में जिनका मन रमता है। जो क्षमा शील और सन्तोषी हैं। स्वभाव से ही सत्यवादी, विनम्र और उदार लोगों के घरों में भी मेरा निवास होता है। जिन घरों की स्त्रियाँ अपनी कुल परम्परा और मान

मर्यादाओं का ध्यान रख गुरु ब्राह्मण अतिथियों तथा सिद्धों तपस्वियों और देव पितृादि का अर्चन-वन्दन करती हैं उन ऐसे घरों में भी मैं अपनी सभी सिद्धियों क साथ रहती हूँ। इसी के साथ यज्ञादि शुभ कर्म सम्पन्न करनेवाले स्थानों में, सत्पुरुषों के सत्सग और सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय और तत्व चिन्तन मे भी मेरा निवास होता है। बरसनेवाले, बादलों मे, शरद्-ऋतु के सुहावने नक्षत्रों में, सिंह, हाथी, गाय, और बैलों के सुन्दर झुण्डों तथा हस, सारसादि के कूजित हरे-भरे और फले फूले वृक्षों में, निर्मल जल से लहराते तालावों और नदियों व कछारों मे भी मेरा निवास है।



किन्तु इन ऊपर बताए स्थानों और गुणों के विपरीत जिन स्त्री पुरुषों की आत्माएँ स्वार्थी और संकुचित हो चुकी हैं, जिनके अन्तस् का उत्साह मर चुका है, काम करने की उमग जिनमें नहीं रह गयी है। जो आज एक सिद्धान्त बनाते हैं अथवा एक काम प्रारम्भ करते हैं और फल विघ्न-बाधाओं या असफलताओं क भय से उसे छोड दूसरा करने लगते हैं वहाँ मै नहीं रहती हूँ। और जिनक घरों में रात क झूठे बासन और चौका

वैसे ही जूठे पड़े रहने दिये जाते हैं जिनके यहाँ घर और आँगन नियमित रूप से रोज रोज नहीं झाड़े जाते हैं। घर-गृहस्थी का सामान जहाँ यथा स्थान न रख योंही जहाँ तहाँ बिखरा पड़ा रहता है। जग जाने पर भी जिनके यहाँ सोने के बिछौने बिछे ही रहते हैं। सूर्य निकलने पर भी जो खर्राटे भर कर सोते रहते हैं अथवा हर-दम सोते रहने की ही अभिलाषा जिनके मनों में घनी रहती है उन ऐसे आलसियों के घरों में मेरे रहने की कल्पना करना ही मिथ्या है। इसी प्रकार जो तेरे मेरे घर फिरने-डुलने में मगन रहते हैं जिनके मनों में दूसरों के दोष देखने और उन्हें किसी प्रकार अपमानित-लाञ्छित करने की भावना रहती है, भले लोगों के निकट बैठने-उठने पर भी जिनका राग द्वेष या दुःख द्रोह शान्त नहीं होता अंश रूप में भी मैं वहाँ नहीं रहती हूँ। इसी प्रकार हे रुक्मिणीदेवी जहाँ के निवासी विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम तथा आचार व्यवहारादि व्यवहारिक बातों तथा दूसरों का सम्मान करने में हल्के होते हैं उन ऐसे स्त्री-पुरुषों और स्थानों में भी मेरा रहना असम्भव होता है।

जो चाहते हैं कि मैं अथवा मेरी शक्तियाँ उनके यहाँ रहें वे अपने व्यवहारों को ऐसा बनावें। जब तक जिनके परिवारों और घरों में ऐसी व्यवहारिकता रहती है तब तक मैं अपनी समस्त शक्तियों के साथ उन मानवों घरों और स्थानों में अचचल होकर रहती हूँ।

लक्ष्मी देवी के अपनी बात पूरी करते ही रुक्मिणी देवी ने हाथ जोड़ कर उनकी वन्दना करते हुए कामना की,—देवि! शक्ति दो कि हम अपने चरित्रबलको ऐसा बना सकें कि आप का ऐसा ही प्रेम और ऐसे ही स्नेहानुग्रह का बल जन्म-जन्मान्तर में हमारे साथ रह सके।

इस प्रकार पितामह के श्री मुख से लक्ष्मी रुक्मिणी का यह पावन प्रसंग जान सभी श्रोताओं के मुख से अपने आप ध्वनित हो उठा—

नमस्ते सर्वदेवाना वरदासिनि! हरि प्रिये,
या गतिस्त्वत्प्रपन्नाना सा मे भवतुतेऽर्चनात्।
धनादाये नमस्तुभ्य निधिपद्माधिपे शुभ,
भवन्तु त्वत्प्रसादेन धन धान्यादिसम्पद॥

आचार और लक्ष्मी

बच्चों के भोले मन पर कोई सिखाई समझाई जानेवाली बात चाहे भले ही अपना प्रभाव देर में डाले अथवा न भी डाले पर अपने अभिभावुकों और साथी सङ्गियों के आचरणों का प्रभाव उनके निर्मल अन्तस् पर अपने आप ही आसानी से स्थायी और सहज स्वाभाविक बन कर बैठत देर नहीं लगती। उनके आचार विचार अनजाने और अनसहेजे, अन सँवारे ही अपने आप वैसे ही बनते चलते हैं, जैसे उनके अभिभावुकों वा साथी-सङ्गियों के होते हैं। इसी लिए जिनके मन में अपनी सन्तानों को सभ्य, सचरित्र एवं सुशिक्षित बनाने की कामना होती है वे अपने बच्चों की अपेक्षा अपने आपके आचरणों को ही सहेजने-सँवारने का प्रयत्न करते हैं।

इसी सनातन सिद्धान्त के अनुसार यह दम्पति भी कुछ अपने भविष्य के लिए और कुछ अपने सन्तानों के भविष्य के लिए अपने प्रत्येक चर्या क कार्य-व्यापार में जागरूकता से काम लेते थे। फलत इनके बच्चे भी इनके आचरणों की प्रतिच्छाया बन रहे थे। वे भी उन्हीं की भाँति सूर्योदय से पूर्व उठते थे। उठकर भगवान का स्मरण और घर बाहर के बड़े बूढ़ों का अभिवादन कर शौचादि से निबटते थे। समयानुसार थोड़ा बहुत व्यायाम करते खुली हवा में घूमते और तब जलपान कर पढ़ते लिखते या खेलते-कूदते। फिर सबके साथ स्नान, भोजनादि करते और इसी प्रकार सन्ध्या समय भी सबके साथ ब्यालू कर नई पुरानी कथा कहानियाँ सुनते और फिर 'जल्दी सोवे, जल्दी जागे, ज्ञान ध्यान सुख सम्पति पावे' के आदर्श को मान भगवान का नाम ले सो जात।

एक दिन बच्चे अपने घर क बाल-कक्ष में बैठे कौतूहल के साथ महाभारत के चित्र देख रहे थे। उसी समय उन्होंने एक चित्र देखा। चित्र से आकर्षित हो वे अपनी समूची शक्ति लगा उसका मतलब जानने का प्रयत्न करने लगे। पर बड़ी कठिनाई के बाद वे इतना ही जान पाए कि चित्र किसी नदी के किनार प्रात की स्फूर्तिमयी वेला का है। यह भी उन्होंने अपने बुद्धि बल से समझ लिया कि चित्र में खड़े बने व्यक्तियों मे एक

कोई ऋषि हैं, एक राजा हैं और एक कोई देवी या महारानी अपनी सखी सहेलियों के साथ सुन्दर रथ के किनारे खड़ी हैं। पर प्रयत्न करके भी व इससे आगे की बात न जान पाए। तब ऐसी ही खुली पोथी ले वे अपने पिता के निकट पहुँचे और कहा,—पिता जी बताइए यह चित्र कब का और किसका है।

पिता ने बच्चों से खीजे-झुँझलाए बिना ही पोथी हाथ में ली और चित्र तथा उसका कथा प्रसङ्ग देखकर कहा,—बेटा, यह चित्र महाभारत में वर्णित शान्ति पर्व के इन्द्र लक्ष्मी सवाद का है। पवित्र पावनी गङ्गा मैया की रेत में यह देवर्षि नारद जी हैं, और यह देवताओं के राजा इन्द्र हैं। और यह रथ के पास सर्व-सिद्धि दायिनी लक्ष्मी जी अपनी शक्तियों के साथ खड़ी होकर उन्हें बता रहीं हैं कि वे कहाँ और कैसे आचरण के लोगों के पास रहती हैं और कहाँ नहीं।

लक्ष्मी जी की बात थी, अनजान भी उनकी ओर आकर्षित होते हैं, अस्तु बच्चों ने कौतूहल के साथ पिता से कहा, पिता जी, हम भी लक्ष्मी जी की बात जानना चाहते हैं कि वे कहाँ रहती हैं, और कहाँ नहीं।

बच्चों की बात सुनते ही पिता के मन में अपने राष्ट्र कवि के 'पालन सहज, सुयोग कठिन है धर्म का, यह प्रेरक शब्द गूँजे। मन में आते ही उसने अनुकूल अवसर की उपेक्षा करना ठीक न समझ तत्काल ही पुस्तक सँभाली और बच्चों को कथा का सार समझाने लगा।

उसने कहना प्रारम्भ किया—बात पुराने समय की है। एक बार देवताओं के ऋषि नारदजी और देवराज इन्द्र गंगाजी के पवित्र ध्रुव द्वार पर पहुँचे। दोनों ने श्रद्धा के साथ सन्ध्या वन्दन किया और वहीं रेत में बैठ धार्मिक चर्चा करने लगे। वे अभी बैठे ही थे कि पूर्व दिशा में सूर्य की स्वर्णिम किरणें फैलती दिखाई दीं। जिन्हें देखते ही वे दोनों श्रद्धा के साथ उठ कर उनकी अर्चना वन्दना करने लगे।

नारद और इन्द्र सूर्य देव की वन्दना कर बैठ ही रहे थे कि उन्होंने सूर्यदेव के किरण जाल के साथ ही एक और दिव्य रथ अपनी ओर आते देखा। रथ की ज्योत्स्ना को देखते ही देवऋषि और देवराज फिर जहाँ के तहाँ खड़े होकर रह गए। इतने में ही वह तेज पुञ्ज रथ उनके निकट आ कर रुक गया। रथ के रुकते ही इन्होंने देखा कि कुछ प्रभामयी देवियाँ उसमें विराजमान हैं। देवियों को देखते ही इन्द्र और नारद ने

मातृजाति के सम्मान की अपनी सनातन परम्परा के अनुसार उन्होंने अपना परिचय देते हुए अपना प्रणाम निवेदन किया और उनका परिचय जानने की अपनी जिज्ञासा प्रकट की।



इन्द्र की बात पूरी होते ही रथ में पद्मासन पर बैठी देवी उनके पास आईं और अपना परिचय देते हुए कहा—देवराज, मैं साक्षात् विष्णु प्रिया लक्ष्मी हूँ और यह सब मेरी वह शक्तियाँ हैं जिनके द्वारा मैं श्रमी साहसी और सत्य निष्ठ व्यक्ति को यश विजय और विभूति देती हूँ। यों तो संसार का हर व्यक्ति अपनी दैनिक-दैहिक और भौतिक सिद्धि के लिए मेरी कामना करता है, पर मैं केवल उसी के पास रहती हूँ जो अपने आचार व्यवहार को शुद्ध बनाए रहता है। अभी तक मैं दैत्यों के यहाँ रहती थी किन्तु अब जैसे ही मैंने देखा कि उनके आचार-विचार अपनी परम्परा से गिरने लगे हैं, मैं उन्हें छोड़ देवताओं के यहाँ रहने के विचार से यहाँ तुम्हारे निकट आई हूँ।

लक्ष्मी की बात पूरी होते ही इन्द्र ने एक बार फिर उन्हें इस लिए प्रणाम किया कि सर्व सिद्धि दायिनी लक्ष्मी देवी उनके प्रतिद्वन्द्वी दैत्यों

को श्री हीन कर उनके यहाँ ही निवास करने आ रही हैं। लक्ष्मीजी को उनकी इस कृपा के लिए फिर एक बार और प्रणाम कर चुकने पर इन्द्र ने श्रद्धा के साथ उनसे कहा—देवि यह तो आपकी बड़ी भारी कृपा देव सायों पर है जो आप पूर्ण रूप से उनके ही यहाँ रहने की कृपा कर रही हैं, पर इसके साथ हम यह और जान लेना चाहते हैं कि अभी तक दैत्यों के आचरणों में क्या विशेषता थी जो आप उनके यहाँ रहती थीं, और अब उनमें ऐसा कौन सा विकार आ गया है जो आप उन्हें श्री-शक्ति हीन कर छोड़ रही हैं।

इन्द्र की बात सुन लक्ष्मी ने कहा—देवराज, तुम्हारा प्रश्न ठीक है, इससे तुम्हारे साथ मेरे लिए लालायित रहने वाले तथा मेरे न पा सकने पर या पाकर खो देने पर मेरी लाञ्छना या विडम्बना करने वाले भी मेरे स्वभाव से परिचित हो जायेंगे। जिसके जान लेने पर फिर किसी भले आदमी को मेरे सम्बन्ध में गलत धारणाएँ बनाने का अवसर न रहेगा।

देवराज! कहने वाले कुछ कहें पर सत्य यह है कि मैं अपनी रुचि से न तो कहीं जाती ही हूँ, और न कहीं से भागती ही हूँ। मेरे भक्तों के आचरण ही मेरे कहीं आने-जाने के कारण हैं। अभी तक मैं दैत्यों के यहाँ थी, इसलिए कि उनके यहाँ आचार विचार का महत्त्व था। 'आचार प्रथमो धर्मः' की बड़ी भारी प्रतिष्ठा उन सब में थी। वे सबके सब नित्य सूर्योदय के पूर्व ही जागकर शौचादि नित्य कर्मों से निबट जप-तप भजन पूजनादि करते थे। सद् ग्रन्थों के अध्ययन और मनन की नियमितता और प्रतिष्ठा उनमें थी। अपनी अध्ययन शीलता के बहाने वे नित्य किसी न किसी चिन्तक या विचारक के पुनीत सम्पर्क का लाभ उठाते थे। देव पित्रादि के साथ घर बाहर के बड़े बूढ़ों, गुरुजनों, विद्वानों तथा अतिथियों की सेवा करना उनका सहज स्वभाव था। उनके सभी घर आँगन नित्य नियम से झाड़े-बुहारे जाते थे। उनके मनों में किसी के लिए भी ईर्ष्या, दम्भ या द्वेष या क्रोध न होकर सभी के प्रति श्रद्धा प्रेम और विश्वास का व्यवहार होता था। झूठ बोलना, जुआ खेलना और पराई निन्दा करना उनके यहाँ बड़ा भारी पाप माना जाता था। 'आप खाय भरकस्त, बाँट खाय बरकत' की परम्परा उनमें थी। अर्थात् कोई भी वस्तु केवल अपने आप ही खा लेना भाड़ मे झोंकने के जैसा था और सबमें मिल बाँटकर खाना वृद्धि का सूचक था। अपने नौकरों तक से दुका छिपा कर कोई

चीज उनके यहाँ न खाई जाती थी। स्वभाव से ही वे सब उदार, सयमी और मृदुभाषी होते थे। सरलता और निरभिमानिता पूर्वक वे सबका यथोचित मान सम्मान करते थे। लज्जा और विनम्रता उनके गुणों की विशेषता थी। आलस या ढोंग का उनमें नाम भी न था। सभी अपना-अपना काम श्रम और समय से पूरा करते थे। न तो कोई काम उनके यहाँ रुका था और न काम करने में उन्हें किसी को आलस वा सकोच ही होता था। कर्मशील व्यक्ति की बड़ी प्रतिष्ठा उनके यहाँ थी। दिन में तो उनके यहाँ कोई सोता ही न था, पर रात में भी उनके सोने-जागने का समय निश्चित था। छिपाकर धन सग्रह करने की बात भी उनमें न थी। असहाय, अनाथ और दीन हीन स्त्री पुरुष बालक और वृद्ध सभी की सेवा करना उनके यहाँ परमधर्म माना जाता था। जिसके कारण अब तक मैं उनके यहाँ थी। पर—

अब मैं देखती हूँ कि वे सदाचारी दैत्यगण वहीं अपने आचार-विचार से गिर कर आलसी अनुद्योगी और अभिमानी बन रहे हैं। पुरुष तो अपने बड़े बूढ़े गुरुजनों तथा अतिथि देवताओं का अनादर करने ही लगे हैं, पर स्त्रियाँ भी अपनी लज्जा और शील छोड़कर घरके बड़े-बूढ़ों के सामने पति तथा नौकर चाकर आदि से लड़ने झगड़ने लगी हैं। और पुरुषवर्ग भी उन्हें मारने पीटने तथा अनादत करने लगा है। युवक गण उत्सव-समारोहों में विद्वानों और गुरुजनों की बात न सुन असभ्यता से उनका विरोध वा अपमान करने लगे हैं। पिता के रहते ही पुत्र अपने धन-सम्पत्ति वा घर-द्वार का अधिकारी बनना चाहता है। उनके घरों में घी दूध और पानी के बरतन यों ही बिना ढके, उघारे पड़े रहते हैं। रात के जूठे बरतन और सोने के कपड़े दिन में भी जहाँ तहाँ फैले पड़े रहते हैं। उनके मनों में इतना स्वार्थ और हल्कापन आ गया है कि अब वे लोग धन सम्पत्ति ही नहीं खाने-पीने की चीजों को भी एक-दूसरे से छिपा कर रखने खाने लगे हैं। न तो वे अपने बच्चों के रहन-सहन या शिक्षा दीक्षा का ही ध्यान रखते हैं, और न घर में पाल कर रक्खे गए पशुओं के ही चारे दाने या रख-रखाव का ध्यान रखते हैं। जिससे वे दोनों ही तरह से पाप के भागी बनते हैं। इन्हीं सब कारणों से उनके घरों में जहाँ प्रेम की निर्मल धारा बहती थी अब वहाँ कलह-कलुष का कीचड़ उछाला जाने लगा है। गुरु ब्राह्मण तथा बड़े-बूढ़ों का आदर तो

को श्री हीन कर उनके यहाँ ही निवास करने आ रही हैं। लक्ष्मीजी को उनकी इस कृपा के लिए फिर एक बार और प्रणाम कर चुकने पर इन्द्र ने श्रद्धा के साथ उनसे कहा—देवि यह तो आपकी बड़ी भारी कृपा देवताओं पर है जो आप पूर्ण रूप से उनके ही यहाँ रहने की कृपा कर रही हैं, पर इसके साथ हम यह और जान लेना चाहते हैं कि अभी तक दैत्यों के आचरणों में क्या विशेषता थी जो आप उनके यहाँ रहती थीं, और अब उनमें ऐसा कौन सा विकार आ गया है जो आप उन्हें श्री-शक्ति हीन कर छोड़ रही हैं।

इन्द्र की बात सुन लक्ष्मी ने कहा—देवराज, तुम्हारा प्रश्न ठीक है, इससे तुम्हारे साथ मेरे लिए लालायित रहने वाले तथा मेरे न पा सकने पर या पाकर खो देने पर मेरी लाछना या विडम्बना करने वाले भी मेरे स्वभाव से परिचित हो जायेंगे। जिसके जान लेने पर फिर किसी भले आदमी को मेरे सम्बन्ध में गलत धारणायें बनाने का अवसर न रहेगा।

देवराज! कहने वाले कुछ कहें पर सत्य यह है कि मैं अपनी रुचि से न तो कहीं जाती ही हूँ, और न कहीं से भागती ही हूँ। मेरे भक्तों के आचरण ही मेरे कहीं आने-जाने के कारण हैं। अभी तक मैं दैत्यों के यहाँ थी, इसलिए कि उनके यहाँ आचार-विचार का महत्त्व था। 'आचार प्रथमो धर्म' की बड़ी भारी प्रतिष्ठा उन सब में थी। वे सबके सब नित्य सूर्योदय के पूर्व ही जागकर शौचादि नित्य कर्मों से निबट जप-तप भजन पूजनादि करते थे। सद् ग्रन्थों के अध्ययन और मनन की नियमितता और प्रतिष्ठा उनमें थी। अपनी अध्ययन शीलता के बहाने वे नित्य किसी न किसी चिन्तक वा विचारक के पुनीत सम्पर्क का लाभ उठाते थे। देव पित्रादि के साथ घर बाहर के बड़े बूढ़ों, गुरुजनों, विद्वानों तथा अतिथियों की सेवा करना उनका सहज स्वभाव था। उनके सभी घर आँगन नित्य नियम से झाड़े बुहारे जाते थे। उनके मनों में किसी के लिए भी ईर्ष्या दम्भ वा द्वेष या क्रोध न होकर सभी के प्रति श्रद्धा प्रेम और विश्वास का व्यवहार होता था। झूठ बोलना, जुआ खेलना और पराई निन्दा करना उनके यहाँ बड़ा भारी पाप माना जाता था। 'आप खाय भरकस, बाँट खाय बरकत' की परम्परा उनमें थी। अर्थात् कोई भी वस्तु केवल अपने आप ही खा लेना भाड़ में झोंकने के जैसा था और सबमें मिल बाँटकर खाना वृद्धि का सूचक था। अपने नौकरों तक से छुका छिपा कर कोई

की बात भी सुनो—प्रारम्भ से ही अपने समाज की यह पावन परम्परा रही है कि जब भी कोई शुभ कार्य या ऐसा अवसर आया कि हमें अपने प्रभु से कामना करनी पड़ी तब अपने ऋषियों ने भिन्न-भिन्न स्वरूपों और भिन्न भिन्न स्वरों में एक ही कामना की है।

हे प्रभो, हमें ऐसा सत्य, ऐसा यश और ऐसी श्री अर्थात् सम्पत्ति दो कि हम दीन-हीन असहाय और निराश्रितों की सेवा सहायता कर सकें। इसी कामना के साथ उपनिषद्कार ने भी अपना पावन सन्देश देते हुए कहा है—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' जो कुछ भी तुम्हें प्राप्त है उसे गहरे में गाड़ कर नहीं समिष्टि के हित की कामना से दूसरों के लिए त्याग भाव से बाँट बराबर कर उसका उपभोग करो।

इसी बात को लोक व्यवस्थाकार ने अपने सीधे-साधे शब्दों में इस प्रकार कहा है—

पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिए यही सयानों काम॥

इतना कह पिता ने अपनी बात पूरी करते हुए सभी बच्चों के साथ हाथ जोड़ गद्-गद् स्वरों में कामना की—प्रभो, हमें वह बल दो कि हम अपने जीवन में अपने ऋषियों के इस शाश्वत सन्देश और आदेश की रक्षा और प्रतिष्ठा कर सकें।



शील और लक्ष्मी

अनन्त वैभवशाली संसार की जड़ में सभ्य और सुसंस्कृत कही जाने वाली विचारधारा का ऐसा अक्षय बीज कहीं जमा है, जो काल के असह्य थपेड़ों में भी उसके परिष्कृत विचारों को नष्ट नहीं होने देता है। जहाँ संसार में बहुत बड़ा परिवार पैसे के लिए कलप-कलप कर कमाते और कमा कर उसे गाड़ धरने वालों का है, वहीं कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें पैसे के कमाने की अपेक्षा उसके सदुपयोग की चिन्ता अधिक रहती है। वे उसके मरम को जानकर कहते हैं—

वे करते ही नहीं हैं पर मूर्ख और विद्वानों में भी कोई भेद-भाव अब उनके यहाँ नहीं रहा। स्त्री पुरुष की पारस्परिक प्रेम, प्रतीति वा तृप्ति नाम शेष ही अब उनमे रह जाने से उनके घरो में वर्णा-शकर सन्तानें पैदा होने लगी हैं। सनातन कुल परम्परा का अभाव ही उनमें हो गया है। आलस, अहकार, ईर्ष्या और द्वेष, दम्भ और अहंकार, झूठ और फरेब ही अब उनका धन्धा रह गया है। मनों से सम्पत्ति की शुद्धि-अशुद्धि का विवेक चले जाने से अब वे सब के सब आपसी छीना झपटी में ही लग रहे हैं। अपने या अपने पूर्वजों द्वारा दिए गए दान-मान के छीनने हड़पने में अब कोई सोच संकोच उन्हें नहीं रह गया है। किसी भी प्रकार से और किसी भी प्रकार का धन खींचने-हड़पने की वृत्ति अब उनकी हो गई है। शिष्य वर्ग गुरु जनों की सेवा समादर न कर उलटे उनसे ही अपनी सेवा समादर कराता है। किसी के भी व्यवहार से शत्रु मित्र की पहिचान असम्भव हो गई है। सामने रहते तो लोग मीठी-मीठी बातें करते हैं पर पीठ फिरते ही मजाक उड़ाने और जड़ें काटने लगते हैं। और फिर जब कोई किसी संकट मे फँसा होता है तब उसके साथ सहानुभूति न बता उसकी खिल्लियाँ ही उड़ाते हैं। किसी के उपकार का आभार या कृतज्ञता प्रकाश करने का भाव उनमें रह नहीं गया है।

देवराज! आचरण की इन्हीं अशुद्धियों के कारण अब दैत्यों का सारा तेज और बल-वैभव क्षीण हो रहा है। उनका सारा पौरुष राख के होम जैसा सार हीन हो रहा है।

फिर भला अब तुम्हीं बताओ सत्य और धर्म से बँधकर रहनेवाली मैं लक्ष्मी या मेरी कोई सिद्धियाँ वहाँ कैसे रह सकती हैं?

लक्ष्मी के इतना कह रुकते ही देवराज इन्द्र ने उन्हें फिर एक बार श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और उनका आभार माना कि उन्होंने अपने कहीं भी रहने न रहने का स्वभाव बताते हुए देवताओं के यहाँ रहने का अपना निश्चय उन्हें बताया।

पिता के मुँह से इन्द्र लक्ष्मी संवाद का यह पावन और प्रेरक प्रसंग सुनकर सभी बच्चे भाव भरी मुद्रा मे एक दूसरे का मुँह देखने लगे, तभी पिता ने उनसे कहा—

बेटा, तुम सबने लक्ष्मी जी के अपने श्री मुख से यह तो सुना कि वे कहाँ रहती हैं और कहाँ नहीं। पर अब थोड़े मे उन्हें पाकर उनके उपयोग

की बात भी सुनो—प्रारम्भ से ही अपने समाज की यह पावन परम्परा रही है कि जब भी कोई शुभ कार्य वा ऐसा अवसर आया कि हमें अपने प्रभु से कामना करनी पड़ी तब अपने ऋषियों ने भिन्न-भिन्न स्वरूपों और भिन्न भिन्न स्वरों में एक ही कामना की है।

हे प्रभो, हमें ऐसा सत्य, ऐसा यश और ऐसी श्री अर्थात् सम्पत्ति दो कि हम दीन-हीन असहाय और निराश्रितों की सेवा सहायता कर सकें। इसी कामना के साथ उपनिषद्कार ने भी अपना पावन सन्देश देते हुए कहा है—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' जो कुछ भी तुम्हें प्राप्त है उसे गाड़कर में गाड़ कर नहीं समिष्टि के हित की कामना से दूसरों के लिए त्याग भाव से बाँट-बरार कर उसका उपभोग करो।

इसी बात को लोक-व्यवस्थाकार ने अपने सीधे-साधे शब्दों में इस प्रकार कहा है—

पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिए यही सयानों काम॥

इतना कह पिता ने अपनी बात पूरी करते हुए सभी बच्चों के साथ हाथ जोड़ गद्-गद् स्वरों में कामना की—प्रभो, हमें वह बल दो कि हम अपने जीवन में अपने ऋषियों के इस शाश्वत सन्देश और आदेश की रक्षा और प्रतिष्ठा कर सकें।

शील और लक्ष्मी

इस अनन्त वैभवशाली संसार की जड़ में सभ्य और सुसंस्कृत कही जाने वाली विचारधारा का ऐसा अक्षय बीज कहीं जमा है, जो काल के असह्य थपेड़ों में भी उसके परिष्कृत विचारों को नष्ट नहीं होने देता है। जहाँ संसार में बहुत बड़ा परिवार पैसे के लिए कलप-कलप कर कमाते और कमा कर उसे गाड़ धरने वालों का है, वहीं कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें पैसे के कमाने की अपेक्षा उसके सदुपयोग की चिन्ता अधिक रहती है। वे उसका मरम को जानकर कहते हैं—

वे करते ही नहीं हैं पर मूर्ख और विद्वानों में भी कोई भेद-भाव अब उनके यहाँ नहीं रहा। स्त्री पुरुष की पारस्परिक प्रेम, प्रतीति वा तृप्ति नाम शेष ही अब उनमें रह जाने से उनके घरों में वर्ण-शंकर सन्तानें पैदा होने लगी हैं। सनातन कुल परम्परा का अभाव ही उनमें हो गया है। आलस, अहंकार, ईर्ष्या और द्वेष, दम्भ और अहंकार, झूठ और फरेब ही अब उनका धन्धा रह गया है। मनों से सम्पत्ति की शुद्धि अशुद्धि का विवेक चले जाने से अब वे सब के सब आपसी छीना झपटी में ही लग रहे हैं। अपने या अपने पूर्वजों द्वारा दिए गए दान-मान के छीनने हड़पने में अब कोई सोच संकोच उन्हें नहीं रह गया है। किसी भी प्रकार से और किसी भी प्रकार का धन खींचने हड़पने की वृत्ति अब उनकी हो गई है। शिष्य वर्ग गुरु जनों की सेवा समादर न कर उलटे उनसे ही अपनी सेवा समादर कराता है। किसी के भी व्यवहार से शत्रु मित्र की पहिचान असम्भव हो गई है। सामने रहते तो लोग मीठी-मीठी बातें करते हैं पर पीठ फिरते ही मजाक उड़ाने और जड़ें काटने लगते हैं। और फिर जब कोई किसी संकट में फँसा होता है तब उनके साथ सहानुभूति न बता उनकी खिल्लियाँ ही उड़ाते हैं। किसी के उपकार का आभार या कृतज्ञता प्रकाश करने का भाव उनमें रह नहीं गया है।

देवराज! आचरण की इन्हीं अशुद्धियों के कारण अब दैत्यों का सारा तेज और बल वैभव क्षीण हो रहा है। उनका सारा पौरुष राख के होम जैसा सार हीन हो रहा है।

फिर भला अब तुम्हीं बताओ सत्य और धर्म से बँधकर रहनेवाली मैं लक्ष्मी या मेरी कोई सिद्धियाँ वहाँ कैसे रह सकती हैं?

लक्ष्मी के इतना कह रुकते ही देवराज इन्द्र ने उन्हें फिर एक बार श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और उनका आभार माना कि उन्होंने अपने कहीं भी रहने न रहने का स्वभाव बताते हुए देवताओं के यहाँ रहने का अपना निश्चय उन्हें बताया।

पिता के मुँह से इन्द्र लक्ष्मी संवाद का यह पावन और प्रेरक प्रसंग सुनकर सभी बच्चे भाव भरी मुद्रा में एक दूसरे का मुँह देखने लगे, तभी पिता ने उनसे कहा—

बेटा, तुम सबने लक्ष्मी जी के अपने श्री मुख से यह तो सुना कि वे कहाँ रहती हैं और कहाँ नहीं। पर अब थोड़े में उन्हें पाकर उनके उपयोग

की बात भी सुनो—प्रारम्भ से ही अपने समाज की यह पावन परम्परा रही है कि जब भी कोई शुभ कार्य वा ऐसा अवसर आया कि हमें अपने प्रभु से कामना करनी पड़ी तब अपने ऋषियों ने भिन्न-भिन्न स्वरूपों और भिन्न भिन्न स्वरों में एक ही कामना की है।

हे प्रभो, हमें ऐसा सत्य, ऐसा यश और ऐसी श्री अर्थात् सम्पत्ति दो कि हम दीन-हीन असहाय और निराश्रितों की सेवा सहायता कर सकें। इसी कामना के साथ उपनिषद्कार ने भी अपना पावन सन्देश देते हुए कहा है—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' जो कुछ भी तुम्हें प्राप्त है उसे गहरे में गाड़ कर नहीं समिष्टि के हित की कामना से दूसरों के लिए त्याग भाव से बाँट-बरार कर उसका उपभोग करो।

इसी बात को लोक व्यवस्थाकार ने अपने सीधे-साधे शब्दों में इस प्रकार कहा है—

पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिए यही सयानों काम॥

इतना कह पिता ने अपनी बात पूरी करते हुए सभी बच्चों के साथ हाथ जोड़ गद्-गद् स्वरों में कामना की—प्रभो, हमे वह बल दो कि हम अपने जीवन में अपने ऋषियों के इस शाश्वत सन्देश और आदेश की रक्षा और प्रतिष्ठा कर सकें।

शील और लक्ष्मी

इस अनन्त वैभवशाली संसार की जड़ में सभ्य और सुसंस्कृत कही जाने वाली विचारधारा का ऐसा अक्षय बीज कहीं जमा है, जो काल के अमद्य थपेड़ों में भी उसके परिष्कृत विचारों को नष्ट नहीं होने देता है। जहाँ संसार में बहुत बड़ा परिवार पैसे के लिए कलप-कलप कर कमाते और कमा कर उसे गाड़ धरने वालों का है, वहीं कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें पैसे के कमाने की अपेक्षा उसके सदुपयोग की चिन्ता अधिक रहती है। ये उसके मरम को जानकर कहते हैं—

धन की उत्तम दान गति मध्यम भोग विलास।
अति निकृष्ट गति तीसरी हो उस धन का नाश॥

ऐसी विचारधारा के मनीषी न तो धन को पाकर बौराते हैं और न उसके चले जाने पर बौखलाते हैं। पैसे की अपेक्षा वे अपने सुकृत और शील को ही अपने जीवन की पूँजी और सिद्धि का बल मानते हैं। सब कुछ खोकर भी वे अपने सुकृत और शील की रक्षा करते हैं। ऐसे मनीषियों को लेकर ही राष्ट्रकवि की वाणी से गुञ्जरित हुआ है—

"मिट जाय भले ही और सभी, तजते न वीरवर धर्म कभी"

लक्ष्मी का कृपा पात्र यह परिवार भी ऐसी ही विचारधारा का था। अपने गरीबी के दिनों में भी इसे अपने मानवीय धर्म-कर्म का ज्ञान था जो इसके घर में हठात् लक्ष्मी को खींच लाया। और फिर उनके आने पर भी उसने अपने विचारों के क्रम को बिगड़ने-बदलने नहीं दिया था। कुछ और परिष्कृत ही वह हुआ था।

पति और पत्नी यही दो उस घर के सिर धरा या कर्ता धर्ता थे। दोनों ही अपने आप में कर्मठ और विचारवान भी थे। किसी से लड़ाई झगड़े की बात उन्हें न पहिले पसन्द थी और न अब। दोनों अपने-अपने ढग से अपना काम करते थे। काम से निपटने पर दोनों ही थोड़ा बहुत अध्ययन मनन और भजन पूजन भी करते थे। पर सच्चा भजन तो उनका अपने दायित्व को निबाहना था। पति के शब्दों में पत्नी उसके घर की श्री, सिद्धि और विभूति थी तो पत्नी के शब्दों में पति उसका वैभव और सौभाग्य का सिन्दूर था।

कामों से छुट्टी पाने पर जब वे एकान्त में बैठते तब दोनों एक दूसरे को अपने अनुभव और शकाओं की बातें बताकर सुलझाते थे। एक दिन पति ने उल्लास भरे शब्दों में पत्नी से कहा—आज मैंने महाभारत के शान्ति पर्व में एक कथा पढी है, जिसमें बताया है कि मनुष्य का शील ही उसकी सिद्धि का प्रधान कारण है। यदि व्यक्ति अपने शील को बनाए रखता है तो श्री, विजय और विभूति तथा सत्य और धर्म, काम और मोक्ष यह कोई भी उससे अलग नहीं हो सकते हैं।

पति की बात सुन पत्नी ने आस्था भरे शब्दो में कहा—व्यास जी ने अपने समाज और सस्कृति पर बड़ा भारी उपकार यह किया है

जो महाभारत में इन ऐसी प्रेरक कथाओं को सग्रहीत कर दिया। बलवन्त नगर 'झाँसी' के कवि श्री नवलसिंह जी प्रधान ने महाभारत की इन कथाओं की प्रतिष्ठा क सम्बन्ध में कहा है—

भारत में हैं न जे प्रसग ते प्रसग नहीं,
जो न इतिहास इतिहास, ते न जानियो।
विधि ने तुला धर कें तौलो चार वेदन सों,
नाम भूरि भारतें सु भारत बखानियो।
या में सब सार निगमागम पुरानन को
धर्म सहितन को निधान पहिचानियो,
श्रवन करौं करें मनन करें हरि
गुनन गनें तें तुल्य वेदन के जानियो।

इतना कह पत्नी ने उस कथा के जानने की अपनी जिज्ञासा प्रकट की और पति ने उसकी श्रद्धा देख बताना प्रारम्भ किया—

एक बार एक ब्राह्मण प्रह्लाद के पास आया, और नमन करके बोला—राजन्। कल्याणकारी ज्ञान जानने की इच्छा से मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। कृपया सत्य ज्ञान की दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ करें।

ब्राह्मण की बात सुन प्रह्लाद ने विनम्रता के साथ कहा—विप्रवर, मुझे क्षमा करें कि इस समय कार्य व्यस्त होने के कारण मैं आपसे कल्याण मार्ग की बात न कर सकूँगा। क्योंकि उसके लिए शान्त और निश्चिन्त अवसर ही उचित होता है। विशेष हानि न हो तो उसके अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करें।

प्रह्लाद की बात सुन ब्राह्मण ने श्रद्धा के साथ कहा—राजन्, मुझे तो आप से सत्य का सन्देश लेना है। उसी की कामना से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। जब भी उपयुक्त समय हो मुझे ज्ञान का सन्देश देकर उपकृत करने की कृपा करें।

ब्राह्मण की इस विनम्र जिज्ञासा और धैर्य ने प्रह्लाद क मन को अपनी ओर और अधिक आकृष्ट किया। फलत कुछ समय पीछे जैसे ही उचित अवसर आया प्रह्लाद ने अपने उस भक्त को ज्ञान का दिव्य सन्देश दिया।

उपदेश क इसी प्रसग में ब्राह्मण ने विनम्रतापूर्वक पूछा—राजन्,

आपको जो यह त्रिलोकी का राज्य मिला है, यदि उसकी प्राप्ति और सिद्धि का रहस्य बता मेरा मार्ग दर्शन कर सकें तो बड़ी कृपा हो।

जिज्ञासु की बात सुन प्रह्लाद ने कहा—ब्रह्मन् राजा के प्रतिष्ठित और दायित्व पूर्ण पद पर होकर भी कभी भूले-बिसरे भी किसी विद्वान् की उपेक्षा किये बिना ही उसके उपदेशामृत को मैं ऐसे हृदयंगम करता हूँ जैसे मधु-मक्खियाँ फूल फूल के रस से अपने मधु कोष को भरती रहती हैं। सुसंस्कृत समाहक की वृत्ति समय आने पर बुरे विचारों से भी सुकृत का नवनीत निकालती है। मैं भी ऐसे ही अपने उपदेष्टा विद्वानों के वचनों को हृदयंगम कर उन पर विचार करके मनमें बैठाता हूँ। और फिर जब वे खरे होकर मन में बैठ जाते हैं तब नियमानुसार उनका पालन करता हूँ। विनेय्शील विद्वानों का उपदेश ही मर्त्यलोक का अमृत है।

इस प्रकार महात्मा प्रह्लाद द्वारा कल्याणकारी उपदेश पाकर भी उनका वह जिज्ञासु शिष्य अनासक्ति भाव से श्रद्धा के साथ उनकी सेवा में लगा रहा। और जब इस प्रकार काफी समय बीत चुका तब एक दिन प्रह्लाद ने प्रसन्नता के स्वर में कहा—'द्विजवर, तुम्हारी साधना और संयम से प्रसन्न होकर मैं तुम्हें उचित वर देना चाहता हूँ बोलो क्या चाहते हो?

गुरु की बात सुन शिष्य ने श्रद्धापूर्वक प्रणामकर कहा—देव, यदि ऐसा ही अनुग्रह है तो अपना शील प्रदान कर मुझे उपकृत करने की कृपा करें।

ब्राह्मण शिष्य की बात सुन गुरुवर बड़े धर्म संकट में पड़ गए। वे प्रसन्न थे कि अपने घर आप जिज्ञासु शिष्य की आत्म तुष्टि वे कर रहे हैं, पर दुखी थे कि उसके लिए अपना शील उन्हें देना पड़ रहा है। वही शील तो उनके जीवन की पूँजी है। पर वचन बद्ध थे। सज्जनों का सनातन सिद्धान्त है—प्राण जाहिं पर वचन न जाहीं—अस्तु प्रह्लाद ने प्रसन्नता के साथ तथास्तु कहा और उनका वह जिज्ञासु शिष्य विनम्रता पूर्वक प्रणाम कर विदा हुआ।

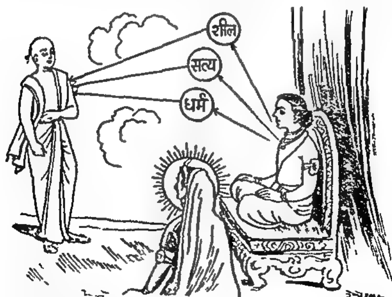
ब्राह्मण के जाते ही प्रह्लाद विचारों की चिन्ता पूर्ण स्थिति मे बैठे थे। उनके सामने प्रश्न था कि अब अपना आगे का शील हीन जीवन कैसे विताएँ?

विचारों की ऐसी ही मन स्थिति मे बड़े वेग का रोमांच उन्हें हुआ।

जिससे वे काँप गए। शरीर की उसी कम्पन के साथ एक दिव्य तेजोमयी मूर्ति उनके सम्मुख उपस्थित हुई और बोली—

राजन् मैं शील हूँ, अब तक मेरा वास तुम्हारे शरीर में था, पर आज तुमने अपने प्रिय शिष्य के पक्ष में मेरा दान कर दिया है। अस्तु, अब मैं तुम्हारे वचनानुसार तुम्हारे शरीर से निकल कर तुम्हारे उस शिष्य के शरीर में रहने जा रहा हूँ। मुझे विदा दो। इतना कह वह मूर्त रूप शील प्रह्लाद को प्रणाम कर अपनी गैल चला गया। उसके जाते ही प्रह्लाद को फिर एक कँप-कँपी आई, और उसी कँप कँपी के साथ एक और दूसरी मूर्ति आकर उनके सामने खड़ी हुई और बोली—राजन् मैं धर्म हूँ। शील के चले जाने से मैं भी आप से विदा माँगने आया हूँ। क्योंकि जहाँ शील जायगा वहाँ मुझे बरबस जाना ही होगा।

प्रह्लाद बेचारे क्या करते। अपने शील धर्म के बन्धन में बँधे मौन मन मार देखते रहे, और शील के साथ-साथ धर्म भी उन्हें छोड़कर चला गया। धर्म के जाते ही सत्य देव आए और शील तथा धर्म के बिना



अपना रहना असम्भव बता वे भी प्रह्लाद को प्रणाम कर ऐसे चलते बने जैसे शरीर के निष्प्राण होते ही दूसरे सभी प्राणवान पदार्थ अपने आप

चले जाते हैं। सत्य के जाते ही यश-विजय और वैभव की देवी लक्ष्मी भी आई और बोलीं—राजन आपने शील, धर्म और सत्य को विदा देकर मानों मेरे लिए कुछ कहे-सुने बिना ही अपने घर-घट के द्वार खोल दिए, हैं। उन सबके बिना मेरी गति कहाँ ? जीवन संग्राम में विजयी बनने के लिए जिस रथ की आवश्यकता होती है उसके उपकरणों के सम्बन्ध में कहा है—

सौरज धीरज जिहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल विवेक दम परहित घोरे। क्षमा दया समता रजु जोरे॥
सखा धर्म मय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके॥

और फिर मेरे लिए तो विशेष रूप से प्रसिद्ध ही है—

सत्य न कबहुँ छोड़िए सत छोड़ें पत जाय।
सत्य की बाँधी लक्ष्मी लौट-लौट घर आय॥

लक्ष्मी देवी की बात सुन प्रह्लाद ने भय कातर मन से कहा—देवी आप सब अब मुझे छोड़कर जा तो रहे ही हैं, पर कृपा कर मुझे इतना तो बताए ही जायँ कि अब आप सब जा कहाँ रहे हैं।

प्रह्लाद की बात सुन लक्ष्मीजी ने कहा—राजन्, तुम्हारा वह प्रिय जिज्ञासु शिष्य जिसे तुमने निष्कपट भाव से सत्य ज्ञान का सन्देश दिया है, ब्राह्मण वेष में और कोई न होकर देवराज इन्द्र थे। कल्याणकारी ज्ञान की कामना से पहिले वह सुरगुरु बृहस्पति के पास गए पर जब वहाँ उनकी जिज्ञासा शान्त न हुई तब देवगुरु ने उन्हें दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पास भेजा। पर—जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई—की भाँति जब वहाँ भी उन्हें सन्तोष लाभ न हुआ तब शुक्रजी ने उन्हें तुम्हारे पास भेजा था। यहाँ आकर उन्होंने सत्य ज्ञान के साथ-साथ तुम्हारे अधिकार और सिद्धि का रहस्य शील भी तुमसे दान में ले लिया। जिसके जाने से सत्य और धर्म के साथ-साथ मुझे भी तुम्हारे यहाँ से जाना पड़ रहा है। क्योंकि हम सब एक ही कभी न टूटने वाले सूत्र में बँधे हैं। किसी एक के जाते ही दूसरों को अपने आप ही उसके पूरक के रूप में जाना होता है।

लक्ष्मी देवी के इतना कहते ही प्रह्लाद एक क्षण के लिए किंकर्तव्य विमूढ़ से उनकी ओर देखते से रह गए। स्यात् उनसे जानना चाहते हों

कि उन्होंने अपने जिज्ञासु शिष्य को अपना शील देकर अच्छा किया या बुरा ?

पर लक्ष्मीजी तो अपनी बात पूरी कर तुरन्त ही चली जा चुकी थीं, शील और सत्य धर्म के बिना वे एक पल भी कहीं कैसे रह सकती थीं।

इस प्रकार कथा के पूरे होते ही पति-पत्नी दोनों मिलकर शील के लक्षण देखने लगे और उन्हें ज्ञात हुआ कि मन वचन और कर्म से संसार के सभी प्राणियों के प्रति उद्विग्न हुऐ बिना निर्वैर-अद्रोही और सहृदयता का भाव रखना ही शील का प्रधान लक्षण है। उसी में जन जीवन की सिद्धि है।

गोबर और लक्ष्मी

एक दिन किलकता पुलकता बच्चा बाहर से आया। एक लपेटा हुआ कागद उसके हाथ मे था। कागद उसने माँ को दिया और उत्सुकता के स्वर में कहा—देखो इस कागद में क्या लिखा है ?

माँ ने कागद खोलकर देखा, एक रंगीन चित्र वह था। किसी प्रचार का पोस्टर। एक बूढ़े बाबा लाठी टेके खड़े थे, एक गाय उनके सामने थी, जिसके नीचे गोबर पड़ा था, उसी की ओर संकेत करके वह कह रहे थे,—गोबर धन है। लक्ष्मी [redacted] वास उसमें है। उसे उठा कर गड्ढों में जमा कर खाद बनाओ, यह खाद खेतों में डालोगे तो धरती सोना उगलेगी, हम-तुम फूले फलेंगे, देश सम्पन्न होगा।

गोबर का जलाना या बरबाद करना पाप है। उससे लक्ष्मी नाराज होंगी। रूठ जायेंगी। खाद न मिलने से खेत नीरस होंगे। उनकी उपज कम होगी। हम-तुम दुखी होंगे। गरीबी के आते ही देश की स्वतंत्रता खतरे में पड़ने लगेगी। देश फिर बरबाद हो जायगा। देश का स्वाभिमान और सम्मान सब जाता रहेगा।

माँ के इतना कहते ही बच्चे ने अचरज भरे स्वर में पूछा—क्यों माँ क्या सचमुच गोबर में लक्ष्मी का वास है ?

माँ ने बच्चे के सिर पर दुलार भरा हाथ फेरा और कहा—हाँ बेटा गोबर में लक्ष्मी का वास है। महाभारत के अनुशासन पर्व में इसकी एक

सुन्दर कथा है। महाभारत में इसकी सुन्दर कथा है, माँ की इस बात ने बच्चे की जिज्ञासा और बढ़ा दी उसने माँ से कहा, माँ, हम भी वह कथा सुनेंगे।

बच्चे की बात सुन माँ ने कहा, अच्छी बात है, आज रात में कोई और कथा-कहानी न कह यही कथा सुनायेंगे।

माँ से रात में कथा सुनाने की बात पक्की कर बच्चा उछलता-कूदता अपने साथियों के साथ खेलने-कूदने चला गया और माँ अपने घर-गृहस्थी के कामों में उलझ गई। और फिर जैसे ही सन्ध्या समय माँ घर के काम काज से निपट कर बैठी कि बच्चे ने वायदे के अनुसार अपने और साथियों के साथ उसे कथा सुनाने को आ घेरा। और माँ ने भी कुछ अपने पुलक से कुछ बच्चों की हुलक से महाभारत का वह पावन प्रसंग सुनाना प्रारम्भ किया—

धर्मराज युधिष्ठिर ने अत्यन्त विनम्रता और श्रद्धा भरे स्वरों में शर शैया पर लेटे पितामह भीष्म से पूछा—पितामह, इस संसार में कौन सी वस्तु सबसे अधिक उपयोगी और पवित्र है? ऐसी कि जो इहलौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की सुख एवं शान्ति की दाता हो।

युधिष्ठिर की बात सुन पितामह ने कहा—बेटा, एक बार परम विद्वान् शुकदेवजी ने भी अपने पिता ऋषिश्रेष्ठ व्यासजी से ऐसा ही प्रश्न किया था, तब व्यासजी ने उन्हें बताया था—बेटा, इस संसार में गाय ही सबसे अधिक पवित्र और उपयोगी है। उसी के पालन, पूजन और दान-मान से मनुष्य दोनों लोकों की सुख-शान्ति पाता है। स्वर्ग से भी ऊपर गायों का अपना लोक है। अर्थात् गायें देवताओं से भी ऊपर हैं। गाय के रोम रोम में देवताओं का वास है। गाय के शरीर के हर छोटे बड़े भाग से मनुष्य को लाभ मिलता है। किसी से शारीरिक तो किसी से आर्थिक और किसी से धार्मिक। इस प्रकार गाय का पालन पूजन ही हमारे लिए—

एकहि साधे सब सधे का प्रतीक है।

पितामह के इतना कह रुकने पर धर्मराज ने फिर उनसे उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक पूछा, और दादा, जो यह कहा जाता है कि गाय के गोबर और मूत्र में लक्ष्मी का निवास है, यह कहाँ तक ठीक है?

विषय के ऊपर धर्मराज की श्रद्धा और जिज्ञासा देख पितामह ने कहा, हाँ भैया, यह बात भी ठीक ही है,। गाय के गोबर और मूत्र में लक्ष्मी का

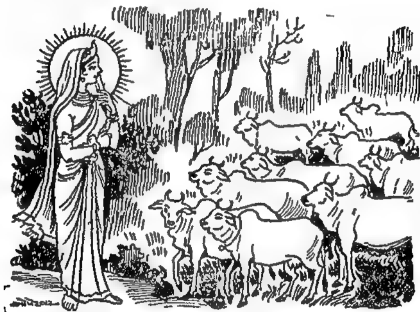
निवास है। पितामह की बात सुन धर्मराज के मन का कौतूहल बढ़ा और उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा,—पितामह भगवान विष्णु के साथ क्षीर सागर में रहनेवाली जगन्माता लक्ष्मी गाय के गोबर और मूत्र में कैसे रहीं, इसका रहस्य भी यदि प्रकट कर सकें तो बड़ी कृपा हो।

अर्जुन के शर से आहत पितामह तो उत्तरायन सूर्य की प्रतीक्षा में जीवन के शेष क्षण ऐसे लोक-हितकारी वातावरण में बिताना ही चाहते थे अस्तु, धर्मराज की बात सुन उन्होंने प्रसन्नता के स्वर में कहा, बेटा, मूर्त रूप में तो लक्ष्मीजी भगवान विष्णु के ही निकट रहती हैं, पर उनके लोक रंजक लीलाविलास के लिए प्राणियों के आचरणों की शुद्धता के अनुसार वे अंश रूप में जहाँ-तहाँ आती-जाती भी रहती हैं। लीलामय के पुनीत सम्पर्क से वे भी लीलामयी बन गई हैं। पहिले वे देव और दानव दोनों के ही पास समान भाव से रहतीं थीं, पर जब दैत्यों के आचरण दूषित होने लगे तब वे उनसे कुपित हो एक सुन्दरी का रूप बना अन्य स्थान की खोज में चलीं कई जगहे देखने के पश्चात् भी जब वे अपने मनोनुकूल स्थान न पा सकीं, तब वे गायों के सुन्दर और स्वस्थ स्वरूप पर आकर्षित हो उनके एक झुण्ड में पहुँचीं।

गायें भी लक्ष्मीजी का मनोहर रूप देख उनकी ओर आकर्षित और आश्चर्य चकित हुईं, गायों ने श्रद्धा के साथ उनसे पूछा,—देवि आप कौन हैं? आप के रूप वैभव से चकित विस्मित हो हम सब आप का परिचय जानने के लिए उत्सुक हैं।

गायों की बात सुन लक्ष्मीजी ने कहा,—हे परम पवित्र गौओं, संसार के सभी प्राणियों को यश, विजय, वैभव और कीर्ति देनेवाली साक्षात् लक्ष्मी ही मैं हूँ,। मेरी कृपा के बिना संसार में धर्म अर्थ काम या मोक्ष की कोई भी सिद्धि किसी को मिल नहीं सकती है। इसीलिए संसार का हर प्राणी मेरे लिए लालायित रहता है। केवल मनुष्य ही नहीं देव, दानव, यक्ष और किन्नर सभी की दृष्टि मेरी ओर लगी रहती है। मेरे ही स्नेहानुग्रह से देवगण स्वर्ग-सुखों का उपभोग कर रहे हैं। अभी तक दैत्यगण भी मेरी अनुकम्पा से फल-फूल रहे थे पर अब उनके आचरण बिगड़ने लगे हैं इससे मैं उन्हें छोड़ तुम्हारे परोपकारी शरीर की पवित्रता देख उसमें निवास करने की दृष्टि से तुम्हारे निकट आई हूँ। मेरे रहने से तुम्हारा शरीर तो और और सुन्दर तथा आकर्षक ही बनेगा पर तुम्हारी पवित्र देह

का एक-एक अंश परोपकार में लगने से मेरा उपयोग भी परोपकार में ही होगा। जब कि कोई और दूसरे सासारिक जन मेरी भावना का अनादर या उपेक्षा कर केवल अपने या अपने कहे जाने वालों के उपयोग के लिए ही मुझे संतते धरते हैं। ससार की इसी स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण मुझे जहाँ तहाँ भटकना भ्रमना पड़ रहा है।



लक्ष्मीजी की बात सुन गायों ने अपने आपस में मिलकर विचार किया। और जब उनका विचार विनिमय हो चुका तब उन्होंने लक्ष्मीजी से कहा—देवि हम आपकी इस इतनी कृपा से ही कृतार्थ हैं कि आप ने हमारी ओर ध्यान तो दिया। किन्तु क्षमा करें कि संसार में विख्यात आपकी चचलता को जान कर हम आपको अपने नश्वर शरीर में रखने के लिए असमर्थ हैं। आप कोई अन्य स्थान अपने लिए खोज लें हमें जैसी हम हैं वैसे ही रहने दें ससार मे आपके लिए लालायित रहनेवालों की कमी नहीं है।

गायों का रूखा उत्तर सुन लक्ष्मीजी ने आश्चर्य भर स्वर मे कहा—हे मगलकारिणी गौओ! तुम यह क्या कहती हो? जिस सर्व सिद्धि

दायिनी लक्ष्मी के लिए तीनों लोकों के प्राणी लालायित रह तरह तरह की तपस्यायें और साधनाएँ करते हैं, उसी को अपने यहाँ आने पर तुम इस प्रकार अनादृत और तिरस्कृत करती हो। यह ठीक है कि किसी के घर बिना बुलाए जाने पर ऐसी ही गति होती है, पर जब मैं निःस्वार्थ भाव से तुम लोगों के समीप आ रही हूँ तब तो तुम्हें मेरा ऐसा अपमान नहीं करना चाहिए। तुम्हारा यह कहना ठीक है कि मेरे लिए लालायित रहने वालों की कमी नहीं है, पर तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि जो व्यक्ति किसी वस्तु विशेष के लिए लालायित रहता है वह निश्चय ही उसके माध्यम से अपने किसी स्वार्थ की सिद्धि करना चाहता है। जब कि मैं निःस्वार्थ व्यक्तियों के पास लोक हित की दृष्टि से रहना चाहती हूँ। यदि आज मैं तुम्हारे यहाँ से इस प्रकार अनादृत होकर जाती हूँ, तो सुननेवाले मेरे और तुम्हारे लिए क्या कहेंगे। इसी बात को फिर से एक बार सोचकर मुझे बताओ।

लक्ष्मीजी की बात सुन गायों ने फिर आपस में मिलकर विचार किया और उन्हें बताया—देवि हम स्वप्न में भी आपका अपमान अथवा अनादर करने की धृष्टता नहीं कर सकतीं। पर आपकी चचल गति के कारण ही आपको रखने में अपनी असमर्थता प्रकट करती हैं।

गायों की बात सुन लक्ष्मीजी ने कहा—देखो गायो तुम सभी को शरण और पोषण देनेवाली हो, तुम्हीं एक ऐसी हो जो अपने पराए सभी का आत्मवत् कल्याण चाहती हो। तुम्हारे शरीर में मेरा वास होने से वह और अधिक पुष्ट और लोकोपयोगी बनेगा, इसी विचार से मैं तुम्हारे शरीर में अक्षय और अचल होकर रहने की कामना करती हूँ। लोक-संस्कृति में अपने घर आए शत्रु का भी इस प्रकार अपमान नहीं किया जाता है, जैसा तुम मेरा कर रही हो। मैं एक बार फिर तुमसे कहती हूँ कि तुम फिर अपने मन में विचार कर मुझे अपनी पवित्र और परोपकारी देह में स्थान दो।

लक्ष्मीजी के इतना कहने पर गायों ने फिर अपने झुंड में मिलकर आपस में विचार किया और सर्व सम्मत निर्णय होने पर लक्ष्मीजी से कहा—देवि, हम सब आपके अत्यन्त आभारी हैं कि आपने अक्षय और अचल होकर हमारे नश्वर शरीर में रहने का विचार और कृपा की है। हम अब अपने हृदयासन पर आपका सादर स्वागत करती हैं, और अपने

तो दूसरे इच्छा हैं। वे यज्ञ हैं तो यह दक्षिणा हैं। वे पुरोडास हैं और यह घृत की आहुति हैं। वे यजमान गृह हैं और ये पत्नीशाला हैं। श्री हरि यूप हैं और श्री लक्ष्मी चिति हैं। भगवान कुशा हैं और लक्ष्मी जी इध्मा हैं। वे साम रूप हैं यह उद्गीति हैं। जगत्पति वासुदेव हुताशन हैं और लक्ष्मी जी स्वाहा हैं। विष्णु शंकर हैं तो लक्ष्मी गौरी हैं। केशव सूर्य हैं तो कमला उनकी प्रभा हैं। वे पितृ गण हैं और यह नित्य पुष्टिदायिनी स्वधा हैं। विष्णु अति विस्तीर्ण सर्वात्मक अवकाश हैं और लक्ष्मी स्वर्गलोक हैं। श्रीधर चन्द्रमा हैं और लक्ष्मी उनकी अक्षय कान्ति हैं। हरि सर्वगामी वायु हैं और लक्ष्मी जगत् गति का आधार धृति हैं। वे समुद्र हैं और यह उसकी तरङ्ग हैं। वे इन्द्र हैं और यह इन्द्राणी हैं। चक्रपाणि यम हैं तो कमला यम पत्नी धूमोर्णा हैं। वे कुबेर हैं और यह ऋद्धि हैं। श्री केशव वरुण हैं और महाभागा लक्ष्मी गौरी हैं। विष्णु देवसेनापति हैं और लक्ष्मी देवसेना हैं। भगवान् गदाधर आश्रय हैं और लक्ष्मी जी शक्ति हैं। वे निमेष हैं और यह काष्ठा हैं। वे मुहूर्त हैं यह कला हैं। हरि दीपक हैं लक्ष्मी ज्योति हैं। वे वृक्ष हैं यह लता हैं। चक्रगदाधर देव विष्णु दिन हैं और लक्ष्मी रात्रि हैं। वरदायक हरि वर हैं और पद्मासना लक्ष्मी वधू हैं। भगवान नद हैं श्री जी नदी हैं। वे ध्वजा हैं, यह पताका हैं। नारायण लोभ हैं लक्ष्मी तृष्णा हैं। एक रति हैं, दूसरे राग हैं।

अधिक क्या कहा जाय समस्त देव, तिर्यक् मनुष्यादि में जितने भी पुरुषवाची अर्थ हैं वे सब विष्णु हैं और जो स्त्री वाची संज्ञाएँ हैं वे साक्षात् लक्ष्मी हैं। इस प्रकार जितना भी यह दृश्य-अदृश्य जगत हैं वह सब इन दोनों में समाया है और यह उन सब में। कहीं भी कुछ ऐसा नहीं है जो इनसे परे हो।

सर्वे भवन्तु सुखिन.

पति द्वारा विष्णु पुराण में वर्णित इस वार्ता के बताने के पश्चात् उसी के पावन प्रकाश में हर्षोल्लास भरा मन ले पति पत्नी मिलकर सोचने लगे।

इस आद्यन्त हीन संसार में जिसे हम अपनी इहलौकिकता या इस जीवन की गति विधि को देखकर ही असार या क्षण-भंगुर कह देते हैं, निश्चय ही अपने में कहीं कोई शाश्वत बीज ऐसा लिए है जिसके बल पर यह मानव परम्परा और मानव-संस्कृति काल के असह्य थपेड़ों को झेलते हुए भी अक्षुण्य बनी है। बात के सोचते ही उनके मन में आया कि यही वह चीज़ है जिसे तत्व चिन्तकों ने धर्म की संज्ञा देते हुए कहा है—

धरति लोकान् ध्रियन्ते पुण्यात्मभिरिति वा।

वह कल्याणकारी आचरण या वृत्ति जिससे जाति या समाज की रक्षा व सुख शान्ति की वृद्धि हो तथा परलोक में अच्छी गति मिले। इसी को मीमांसाकार ने "य एव श्रेयस्कार स एव धर्म शब्दे नो उच्यते" अर्थात् जो कुछ भी मङ्गलकारी व श्रेयस्कर है, वही धर्म है। ऐसा कहा है।

उसी धर्म की विवेचना में महाभारतकार ने कहा है—

सर्वेषा य सुहृन्नित्य सर्वेषा च हित रत ।
कर्मणा मनसा वाचा सधर्म वेद जाजले॥

हे जाजले, धर्म को उसी ने जाना है जो मन वचन और कर्म से सभी के हितचिन्तन में लगा हुआ सभी का नित्य स्नेही बना है। अर्थात समग्र का हित चिन्तन ही शाश्वत और सनातन धर्म है।

मनु महाराज ने भी धर्म की व्याख्या की है। और कहा है—

अहिंसा सत्यमस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
एत सामासिक धर्म चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु ॥

किसी की हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, शुद्धता से रहना और इन्द्रियों को वस में रखना यही चारों वर्णों अर्थात् सर्वसाधारण का मर्म है।

धर्म की इस व्याख्या को जानते ही उनके मन में यह एक आप्त वाक्य आया और वे कहने लगे—

वृत्त यत्नेन सरक्षेद् वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्त क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हत ॥

चरित्र की रक्षा यत्नपूर्वक करना चाहिए, धन तो आता जाता रहता है। इसलिए धन से क्षीण को क्षीण नहीं माना जाता पर आचार भ्रष्ट तो मरे से भी गया बीता होता है।

मन की इन भव्य भावनाओं में सर्व सिद्धि-दायिनी लक्ष्मी देवी के विराट् विश्व कल्याणकारी स्वरूप की अलखज्योति को जगते ही दम्पति के गद् गद् स्वरों में गूँज उठा—

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां,
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।

यह पृथिवी जो विविध भाषा भाषियों और विविध धर्मावलम्बियों को इस प्रकार धारण करती है, जैसे वे सब एक ही परिवार के सदस्य हों। हमारे लिए दुधारू गाय की भाँति निरन्तर ऐश्वर्य की सहस्रों धाराएँ प्रवाहित करे। और,

हे देव गणो! हम कानों से सदा कल्याणकारी वचन सुनें, आँखों से सदा शोभन दृश्य देखें और सदा दिव्य कर्म करते हुए पूर्णायु प्राप्त करें।



भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि—
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

श्रीरस्तु

याचना

हे प्रभो !

मेरे पास जो असेवनीय लक्ष्मी पड़ी है, जो किसी लोक-रञ्जक प्रीति मय सेवा कार्य में न लग कर मेरे मोह और दुराचरण का कारण बन रही है, मैं न तो स्वयं ही उस का उपभोग कर पा रहा हूँ और न औरों को ही उपयोग के लिए देता हूँ। वह ऐसी 'अजुष्टा' लक्ष्मी मुझ से चिपट कर मेरे जीवन रस को इस प्रकार चूस रही है जैसे वन्दना बेल जिस वृक्ष पर चढ़ती है उसी को सुखा देती है।

इससे हे मेरे प्रेरक प्रभु ! मुझे इस ऐसी सम्पत्ति से बचाइए, या तो मुझे ही बल दीजिए, या फिर आपही उसे मुझ से दूर कर अपने हिरण्मय हाथों से ऐसा थोड़ा सा ही धन दीजिए जो निष्कलंक हो, मेरे आत्म तेज और वीर्य को बढ़ाने वाला हो। उसका एक-एक कण इसी दिव्य शक्ति से भरा हो। जहाँ भी वह जाय वहीं मंगल कारी हो।

या मा लक्ष्मी पतयालूरजुष्टा—
मिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा
हिरण्यहस्तो वसु नो रराण
(अथर्व वेद ११५।२)

और हे प्रभो, उस ऐसी लोक लक्ष्मी को पाकर हम आप के उस आदेश को भी न भूलें जिसमे आपने कहा है—

'रमन्ता पुण्या लक्ष्मी'

(अथर्व वेद ७।११५।४)

अर्थात् ईमानदारी से परिश्रम से कमाया हुआ धन ही मनुष्य के पास रहता है। उसे ही पाकर वह फलता फूलता है।

मन की इन भव्य भावनाऊ
विराट् विश्व कल्याणकारी स्वर
के गद् गद् स्वरों मे गूँज उठा--
जनं बिभ्रती बहुध

सहस्र धारा प्रवि

यह पृथिवी जो विविध भा
इस प्रकार धारण करती है, हँ
हमारे लिए दुधारू गाय की
प्रवाहित करे। और,
हे देव गणो! हम कान
से सदा शोभन दृश्य देखें औ



भद्र कर्णेभि

स्थिरै रं

हे हिरण्यगर्भा परमेश्वर नम्र विनय यह तुम से,
वह अपार धन वैभव स्वामिन् दूर करो हम से।
न तो विलास पायें हम जिस को कर न सकें पर सेवा,
सलटें उसके मोह पाश में पड हों काल-क्लेवा।
आत्म-तेज दो, आत्म-वीर्य दो, छोड सकें जो उसको,
और नहीं तो उस अभद्र से तुम्हीं बचाओ जगको।
देव 'अजुष्ट'[१] सम्पति वह जो पडी गडी है भू पर।
सुखा रही व न्दना बेल सी चढ जग तरु के ऊपर।
यह प्रवचना मूर्ति लक्ष्मी प्रेरक आप समेटो।
भव-वैभव, समता ममता के दो कण जग को भेटो
और प्रभो दो ज्ञान कि हम पालें आदेश तुम्हारा,
श्रम से प्राप्त पुण्य श्री से ही फूल फले जग सारा।



१—उपयोग में न आनेवाली सम्पत्ति।

पाठक कृपया अपनी प्रति में सुधार कर लें

पृष्ठ	पंक्ति	जो है	जो होना चाहिए
१	३	कहने-सुनने	इसके कहने-सुनने
३	१	कमल घिसाई	कलम घिसाई
८	५	नाय	प्राय
१४	८	नामाम्यह	नमाम्यह
१४	१७	इष्ट्या	इष्ट्वा
१४	२०	पणाम्यह	प्रणमाम्यह
५	१	बादलों	बाजों
८	१	भाने	अपने
१०	२५	गाँव पुरवालों	गाँव पुरावालों
११	११	नही	नदी
१८	२१	मुझे	मुझे
२५	१८	आतें	आते
३३	१२	चलती हूँ	चलती तो हूँ
३७	१	जानू	जानू
४०	४८	रूप	रूप
६६	२६	स्फूतिमयी	स्फूर्तिमयी
८२	१७	था	चार
८६	१६	कहो	और
९०	२	म्वरूप	स्वरूप
९१	१२	यही	यहीं
९२	६	मूति	मूर्ति